❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष २ | गौराब्द ४७०, मास—हृषिकेश २६, वार—वासुदेव रवीवार, ३१ भाद्रपद, सम्वत् २०१३, १६ सितम्बर १९५६ | संख्या ४

श्रीश्रीसुभद्रा-स्तोत्रम्

[परमेश्वर बलभद्रजीको प्रणामकर कमलयोनि ब्रह्माजी जगदीश्वरी विष्णुशक्ति श्रीश्रीसुभद्राजीका दर्शन करनेके लिये उनके रथके समीप गये और उनका इस प्रकार स्तव करने लगे ।]

जय देवि जगन्मातः प्रसीद परमेश्वरि ।
कार्य-कारण-कर्त्री त्वं सर्वशक्त्यै नमोऽस्तु ते ॥१॥

सर्वस्य हृदि संविष्टे ज्ञान-मोहात्मिके सदा ।
कैवल्य सुखदे भद्रे त्वां नमामि सुरारणिम् ॥२॥

हे जगदम्बे ! देवि ! तुम्हारी जय हो । परमेश्वरि ! तुम्हीं कार्य-कारण-कर्त्री और सर्व शक्ति हो । तुम्हें नमस्कार है ॥१॥

कैवल्य सुखको प्रदान करनेवाली हे सुभद्रे ! तुम अखिल जीवोंके हृदयमें विराजित हो । हे ज्ञान-मोहात्मिके ! तुम देवताओंके सूर्य-स्वरूप हो । हे भद्रे ! तुम्हें नमस्कार है ॥२॥

देवि त्वं विष्णु-मायासि मोहयन्ती चराचरम् ।
हृत्पद्मासन-संस्थासि विष्णु-भावानुसारिणि ॥३॥

हे देवि ! तुम चराचर जगत्‌को मोहित करने वाली विष्णुमाया हो । हे विष्णुकी इच्छाओंका अनुसरण करनेवाली देवि ! तुम कमलाके रूपमें विष्णुके हृदय-कमल पर सदा-सर्वदा विराजमान रहती हो ॥३॥

त्वमेव लक्ष्मीर्गौरी च शची कात्यायनी तथा ।
यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥
तस्य सर्वस्य शक्तिस्त्वं स्तोतुं त्वां कस्तु शक्तिमान् ॥४॥

मातः ! तुम्हीं लक्ष्मी हो, तुम्हीं गौरी हो, तुम्हीं शची हो, कात्यायनी हो, अधिक और क्या कहूँ जगत्‌की सत् और असत् समस्त वस्तुओंके समुदाय-की शक्ति तुम्हीं हो; हे अखिलात्मके । तुम्हारा स्तव करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ॥४॥

जय भद्रे सुभद्रे त्वं सर्वेषां भद्र-दायिनि ।
भद्राभद्र स्वरूपा त्वं भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥५॥

जननि ! तुम सभीका भद्र (कल्याण) करने वाली होनेके कारण भद्रा नामसे प्रसिद्ध हो । अतएव हे सुभद्रे ! तुम्हारी जय हो । हे भद्रकालि ! भद्राभद्र सब कुछ तुम्हीं हो । तुमको नमस्कार करता हूँ ॥५॥

त्वं माता जगतां देवि पिता नारायणो हि सः ।
स्त्री-रूपं सर्वमेव त्वं पुं-रूपो जगदीश्वरः ॥६॥

देवि ! तुम अखिल विश्वकी जननी हो और भगवान् नारायण—पिता है । जगत् की समस्त नारी मूर्त्ति तुम हो और जगदीश्वर नारायण ही पुरुष मूर्त्ति-स्वरूप हैं ॥६॥

युवयोर्नहि भेदोऽस्ति नास्त्यन्यत् परमेवहि ।
यथा वयं नियुक्ताहि त्वया वैष्णव-मायया ।
निदेशकारिणो नित्यं भ्रमामः परमेश्वरि ॥
वृत्तिः प्रवृत्तिः परमा क्षुधा निद्रा त्वमेव च ।
आशा त्वमाशापूर्णा च सर्वाशा-परिपूरका ॥७-८॥

हे परमेश्वरि ! तुम दोनोंमें तनिक भी भेद नहीं है । तुमलोगोंसे बढ़कर जगत्‌में कोई भी दूसरा तत्त्व नहीं है । विष्णुकी मायाने हमें जिस कार्यके लिये नियुक्त किया है, हम प्रत्येक क्षण उसीकी आज्ञानुसार भ्रमण कर रहे हैं । परमावृत्ति कहो, प्रवृत्ति कहो, क्षुधा कहो, निद्रा कहो, आशा कहो, और आशाकी पूर्णता कहो—सब कुछ तुम्हीं हो और एकमात्र तुम्हारी कृपासे ही सबकी सभी आशाएँ पूर्ण होती हैं ॥७-८॥

मुक्तिप्रदा त्वमेवासि बन्धहेतुस्त्वमेव च ।
सर्वकामप्रदे नित्ये भक्तानां कल्पवल्लरी ॥
त्राहि पादाब्जलग्नं मां कृपापाङ्ग-विलोकनैः ॥९-१०॥

मातः ! तुम्हीं जीवोंको मुक्ति देनेवाली हो और उनके संसार-बन्धनका कारण भी तुम्हीं हो । हे सनातनि ! तुम भक्तोंकी सर्वकामप्रदा कल्पलतिका-स्वरूप हो । अतएव हे भक्त-वत्सले ! मैं तुम्हारे चरणोंमें पतित हो रहा हूँ, अपनी कृपा-कटाक्षसे मेरा परित्राण करो ॥९-१०॥

[—उत्कल खण्डके २७ वें अध्यायसे]

आलवारोंकी जीवनी

कुलशेखर

जन्म, स्वरूप, और कुल परिचय

प्राचीन कालमें कल्लिनगरमें शेर-राजवंशके दृढ़व्रत नामक एक बड़े धर्मात्मा राजा थे। उनके कोई सन्तान न थी। अन्तमें उन्होंने पुत्रके लिये तप किया और उस तपके प्रभावसे २७ कल्यब्दके पराभव वर्षमें, पुनर्वसु नक्षत्रमें उनको एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। पुत्रका नाम कुलशेखर रखा गया। श्रीवैष्णव सम्प्रदायमें कुलशेखर भगवान्‌की कौस्तुभ-मणिके अवतार माने जाते हैं। कल्लिनगर मालयालम या मालाबार प्रदेशके अन्तर्गत है। शेरवंशके राजालोग यहाँ अत्यन्त प्राचीन कालसे ही राज्य करते आ रहे हैं। प्राचीन केरल देश आजकल त्रिवाङ्कुर राज्यके अन्तर्गत है।

शिक्षा और राज्यविस्तार

कुछ ही दिनोंमें कुलशेखर तामिल और संस्कृत भाषामें पारंगत हो गए और इन भाषाओंके समस्त धार्मिक ग्रन्थोंका—वेद, वेदान्त, रामायण, अष्टादश पुराण आदि शास्त्र-समूहका गहरा अध्ययन कर लिये। यही नहीं, वे राजनीति, युद्धविद्या और धनुर्वेद आदिमें भी प्रवीण हो गए। सत्त्वगुणकी प्रबलतासे इन्होंने श्रीनारायणके चरणकमलोंकी सेवाको ही अपने जीवनका एकमात्र व्रत स्थिर कर लिया।

राज्यसिंहासन पर बैठनेके बाद कुलशेखरने देशमें रामराज्यकी पुनः स्थापना की। ये केवल केरल देशके ही राजा न थे, प्रत्युत् उनकी उपाधिसे प्रतीत होता है कि वे केरल, पाण्ड्य और चोल—इन तीनों राज्योंके ही अधीश्वर थे। दक्षिणमें अति प्राचीन कालसे ये तीनो राज्य अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। कुछ ही दिनोंमें अपने असाधारण पराक्रम और राजोचित गुणोंके कारण उन्होंने निकटवर्ती समस्त राज्योंपर अपना प्रभुत्व स्थापन कर लिया। अन्तमें उन्होंने मानव-बलकी क्षुद्रता, क्षणभंगुरता और अनित्यता उपलब्धि कर भगवान्‌के चरणोंमें शरणागत होनेका निश्चय कर लिया। क्रमशः उनका हृदय भगवान्‌के विरहमें तड़पने लगा। उनके चित्तमें श्रीरंग और वेंकटाचल आदि सुप्रसिद्ध भगवत् क्षेत्रोंके दर्शनोंकी तीव्र उत्कंठा पैदा हुई। इस तरह उनमें भक्तिके लक्षण-समूह सुस्पष्ट रूपमें प्रकाशित होने लगे।

कुलशेखरका भगवत् प्रेम

वे श्रीरामायणकी कथा सुनते-सुनते बहुधा भावावेशमें मग्न हो जाते। रावणको दंड देनेके लिये युद्धकी घोषणा कर अपनी विराट सेनाको लेकर समुद्र तटपर उपस्थित हो जाते। पार्थिव ज्ञानसे रहित होकर—अपने शरीरकी सुध-बुध खोकर श्रीरामचन्द्र की सहायता द्वारा उनकी सेवा करनेके अभिलाषी होते। मंत्रियों और दरबारियोंने जब यह देखा कि महाराज राजकाजको भुलाकर दिन-रात भक्ति-रसमें डूबे रहते हैं—उन्मत्त रहते हैं, उनके महलमें भक्तों का भारी जमघट रहता है तथा शासनमें बड़ी गड़बड़ी फैल रही है, तब वे बड़े चिन्तित हुए। महाराजका उन्मत्त भाव देख कर उन्हें बड़ी लज्जा होती। अन्ततोगत्वा उन लोगोंने मिलकर षड्यन्त्र करना आरम्भ किया, जिससे भक्त लोग महाराजसे मिल न सकें और महाराजका मन भक्तोंकी ओरसे फिर जाय।

मंत्रियोंका षड्यन्त्र और वैष्णव-मर्यादाकी स्थापना

महाराजके आराध्यदेव श्रीरामचन्द्र थे। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीकी अर्चामूर्तिको नाना-प्रकारके बहु-मूल्य आभूषणोंसे विभूषित कर रखा था। इन आभूषणों तथा अर्चामूर्तिकी सेवाका समस्त भार वैष्णवोंके ऊपर था। एक दिन मन्त्रियोंके षड्यन्त्रसे भगवान्‌के अलंकारोंमें से एक बहुमूल्य रत्नहार चोरी चला गया। मन्त्रियों और दरबारियोंने राजा के सामने इस बातको प्रमाणित करनेकी भरपूर कोशिश की कि वैष्णवोंने ही यह चोरी की है।

महाराज कुलशेखरको इस बातका विश्वास था कि वैष्णव लोग कभी भी ऐसा आचरण नहीं कर सकते। उन्होंने भक्त-बल दिखलाकर वैष्णवोंकी मर्यादा स्थापन करनेका मन-ही-मन निश्चय किया। उन्होंने कुछ विषधर सर्प मँगवाकर एक बर्त्तनमें रखवाया और स्वयं अपना हाथ उस बर्त्तनमें डाल कर मंत्रियोंसे कहा—'यदि मेरे परम बन्धु वैष्णव-लोग अपराधी हैं तो ये सर्प अवश्य ही मेरे हाथमें काटेंगे, अन्यथा ये साँप मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। सबने आश्चर्यके साथ देखा कि कोई भी साँप अपने स्थानसे हिला तक नहीं—मंत्रमुग्धकी तरह ज्यों के त्यों बैठे रहे। यह देख कर मंत्री और दरबारी बड़े लज्जित हुए और महाराजके चरणोंमें गिर कर अपना दोष स्वीकार किया।

विषयी लोगोंका संगत्याग तथा श्रीरंगनाथकी सेवामें आत्मनियोग

इधर कुलशेखरने मन-ही-मन विचार किया—

वरं हुतवहज्वाला पञ्जरान्तर्व्यवस्थितिः।
न शौरिचिन्ता-विमुखजन संवास वैशसम्॥
(कात्यायन-संहिता)

—जलती हुई आगकी लपटोंसे युक्त पिंजड़ेमें वास करना अच्छा है, तथापि कृष्ण-चिन्तासे विमुख लोगोंका संगरूप विपद उपस्थित न हो।

भजन करनेके लिए इच्छुक प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्त्तव्य है कि विषयी लोगोंका संग अवश्य परित्याग करे। ऐसा निश्चय कर कुलशेखरने अपने पुत्रको सारा राजपाट देकर स्वयं श्रीरंगनाथजीके चरणोंका आश्रय ले लिया। श्रीरंगक्षेत्रमें रहते समय उन्होंने श्रीरंगनाथजीके मंदिरकी तृतीय प्राचीरकी चारों ओरकी दिवाल और कतिपय गृह तथा मंडपों का निर्माण करवाया था। आज भी श्रीरंगम् नगर के पथ-समूहके प्राचीन नामोंका खोज करने पर वहाँ के नागरिक "श्रीकुलशेखर-मार्ग" का निर्देश कर देंगे।

उनके रचित ग्रन्थ

कुलशेखरने तामिल और संस्कृत भाषामें भक्ति रससे सने हुए अनेक मधुर-मधुर पदोंकी रचनाएँ की है। 'पेरुमाल तिरुमाल' तामिल भाषामें एक अति उत्कृष्ट ग्रन्थ है। संस्कृत भाषामें उन्होंने 'मुकुन्द माला स्तोत्र' नामक एक प्राञ्जल और भक्ति-उद्दीपक भाव-ग्रन्थकी रचना की है। मुकुन्दमालके रचयिता कुलशेखरके नामसे भारतके सभी वैष्णव विशेष परिचित हैं। भाषाकी मधुरता और भावोंकी कोमलतामें यह स्तोत्र-ग्रन्थ अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं रखता। इस ग्रंथका खूब आदर और प्रचार है।

कुलशेखरका समय

श्रीकुलशेखरके स्थितिकालके सम्बन्धमें नवीन गवेषकोंका मत है कि वे दशवीं शती (शकाब्द) में वर्त्तमान थे। यामुनाचार्य जब श्रीरंगम में वर्त्तमान थे, उस समय वे भी अपने कार्योंमें नियुक्त रहकर वहीं श्रीरंगमूमें ही वास करते थे। इस विषयमें वक्तव्य यह है, कि गोदादेवीके विवाहका अनुकरण कर कुलशेखरने भी श्रीरंगनाथजीके साथ अपनी कन्याका विवाह दिया था। संभवतः कुलशेखर यामुनाचार्यके कुछ पहले ही श्रीरंगमूमें आगमन किये थे और उनके पहले ही विष्णुचित्त तथा गोदा आदि दिव्य सूरि लोगोंने (आलवारवर्ग) श्रीरंगनाथ के चरणोंमें आश्रय ग्रहण किया था।

ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती

प्रवृत्ति और निवृत्ति

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष २, संख्या ३, पृष्ठ ३४४ से आगे]

हम जब पंचभूतात्मक ब्रह्माण्डको भेद कर समाधियोग द्वारा अप्राकृत तत्त्वकी उपलब्धि करते हैं, तब हमारे हृदयमें अजस्र आनन्द-स्वरूप भक्ति-योगका उदय होता है। यही भक्तियोग हमारा नित्य-स्वभाव है और इसीकी गाढ़ता ही हमारे लिए चिर-प्राप्य है। भगवान्‌की सेवा हमारे अप्राकृत स्वरूपका लक्षण है। हम अपनी विकृत बुद्धिकी सहायतासे कभी भी अप्राकृत तत्त्वका साक्षात्कार नहीं कर सकते। क्योंकि इस समय हमारी बुद्धि प्राकृत विषयों से सम्बन्धयुक्त होनेके कारण सम्पूर्णरूपसे प्राकृत हो गयी है। इसलिए इस बद्धदशामें अप्राकृत तत्त्वके सम्बन्धमें हमारा तर्क करना व्यर्थ है—

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥
(म० भा० भी० पर्व ५।२२)

—अचिन्त्य भावोंके सम्बन्धमें तर्क नहीं करना चाहिए। अचिन्त्यका लक्षण यह है कि वह प्रकृतिसे परे होता है।

अचिन्त्य विषयोंमें युक्ति-तर्क प्रयोग करनेके कारण ब्रह्माजीने अद्वैतवादियोंका खूब तिरस्कार किया है—

श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल-बोध लब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूल-तुषावघातिनाम्॥
(श्रीमद्भा० १०।१४।४)

—हे भगवन्! जो लोग सब प्रकारके कल्याणके मूल-स्रोत स्वरूप आपकी भक्तिको छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिए श्रम करते हैं तथा दुःख भोगते हैं, उनको बस क्लेश-ही-क्लेश हाथ लगता है और कुछ नहीं। जैसे थोथी भूसीको कूटने वालोंको केवल परिश्रम ही सार होता है, चावल नहीं।

स्वतःसिद्ध विश्वास ही अप्राकृत तत्त्वका प्रकाशक है

इस विषयमें स्वतःसिद्ध विश्वास ही हमारे कल्याणका मूल उद्गम स्थान है। श्रीचैतन्यचरितामृतका कथन है—

'विश्वासे पाइये कृष्ण तर्के बहु दूर'

अर्थात्, सरल विश्वाससे ही कृष्णको पाया जा सकता है, तर्कसे तो वे बहुत ही दूर रहते हैं। तर्कके आधारपर अप्राकृत तत्त्वको स्थापन करने अथवा उस पर विचार करनेकी चेष्टा करनेसे हम या तो नास्तिक हो जाएँगे और नहीं तो अद्वैतवादी। अतएव हे भक्तवृन्द! अप्राकृत तत्त्वोंके सम्बन्धमें तर्क करना उचित नहीं। केवल निर्मल स्वतःसिद्ध विश्वास का अवलम्बन कर श्रीकृष्ण भजनमें लग जाइए।

अप्राकृत तत्त्वमें जो स्वतःसिद्ध विश्वास दिखलाई पड़ता है, उसीको विशुद्ध ज्ञान कहा जा सकता है। जीव अप्राकृत हैं, अप्राकृत परमेश्वर ही उपास्य हैं तथा अप्राकृत धाम ही जीवका अपना घर है—ऐसे सिद्धान्तोंको ज्ञान कहा जा सकता है।

संसारसे वैराग्यकी आवश्यकता तथा वैराग्य प्राप्तिका उपाय

ऐसी अवस्थामें इस मायामय ब्रह्माण्डके प्रति जीवोंका वैराग्य होना नितांत आवश्यक है। वैराग्य कैसे उत्पन्न हो—इस बातकी विवेचना करना कर्त्तव्य है।

मूर्ख व्यक्ति इन सिद्धान्तोंका दुरुपयोग कर अपने जीवनके प्रति विरक्त होकर आत्मघाती होते हैं।

जैसे कोई कैदी स्थिर समयके पूर्व ही कारागारसे अन्यायपूर्वक भाग निकले तो वह पकड़ा जाकर पुनः अधिक कठोरतासे अवद्ध किया जाता है, वैसे ही आत्मघाती जीव नाना प्रकारके कष्टोंके साथ गाढ़ रूपमें बद्ध हो जाता है। उससे मुक्त होनेके लिए न्यायसंगत विधि अवलम्बन करना चाहिए, अन्यथा परित्राण कैसे पाया जा सकता है? वैराग्यका अवलम्बन करना ही न्याय-विधि है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

वैराग्यका यथार्थ लक्षण

जो दुर्बल व्यक्ति संसारसे विरक्त हो पड़ते हैं, उनका ऐसा विश्वास होता है कि वे समाजको त्याग-पूर्वक वनमें जाकर वैराग्यका आचरण करते हैं। किन्तु इसे वैराग्य नहीं कहा जा सकता है। विदुरजी कहते हैं—

जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवाद्धर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ।
अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥

(श्रीमद्भा० ३।५।३)

—जो लोग अपने पूर्व कर्मानुसार भगवान् कृष्णसे विमुख, अधर्मपरायण और अत्यन्त दुखी हैं, उन पर कृपा करनेके लिए ही श्रीकृष्णके मङ्गलमय भक्तजन संसारमें विचरण करते हैं। श्रीमद्भागवत ३।७।४१ में फिर कहते हैं—

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानादि चानघ ।
जीवाभय-प्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥

—हे अनघ! भगवत् तत्त्वके उपदेश द्वारा जीवोंको अभयदानके सोलहवें अंशके साथ भी समस्त वेदोंके अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानकी तुलना नहीं की जा सकती है।

और भी—शिवाय लोकस्य भवाय भूतये
यं उत्तमः श्लोक-परायण जनाः ॥
जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं
मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥

(श्रीमद्भा० १।४।१२)

—जिन लोगोंका जीवन भगवान्के आश्रित है, वे संसारके लिए ही जीवन धारण करते हैं। उसमें उनका अपना कोई भी स्वार्थ नहीं होता। महाराज परीक्षितका शरीर तो प्रजाके हितके लिए ही था, उन्होंने विरक्त होकर उसका परित्याग क्यों किया?

निर्जन स्थानमें अकेले तपस्या करना—स्वार्थ परता है, वैष्णवता नहीं

प्राणिमात्रका उपकार करना ही हमारा प्रधान कार्य है। इस प्रधान कार्यका परित्याग कर जो लोग अकेले तपस्या करनेके लिये वनमें गमन करते हैं, वे स्वार्थी हैं। अतएव ऐसे व्यक्ति वैष्णव नहीं कहे जा सकते। प्रह्लाद महाराजने स्वयं अपने स्तवमें ऐसा कहा है—

प्रायेण देव मुनयः स्व-विमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थ-निष्ठा ।

—हे देव! अपनी ही मुक्तिकी इच्छा करनेवाले मुनिजन तो प्रायः निर्जन वनमें जाकर मौन व्रत धारण करते हैं; किन्तु वे दूसरोंकी भलाईके लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते।

जो लोग संसार-तरंगमें पड़कर इसके थपेड़ोंको अम्लान वदनसे सह्य करते हुए सब जीवोंके प्रति दया करते हैं तथा जीवोंका आध्यात्मिक क्लेश दूर करनेके लिये सर्वदा भगवान्से प्रार्थना करते हैं, उन्हें वैष्णव कहते हैं। ऐसे व्यक्ति ही महापुरुष कहलानेके योग्य हैं।

श्रीहरिदास ठाकुरका सच्चा वैराग्य और उनकी वैष्णवता

हरिदास ठाकुरके पवित्र और अनुकरणीय चरित्र की आलोचना करनेसे ऐसा कौनसा दुर्भागा पुरुष होगा, जिसके हृदयमें भगवद्भक्ति उत्पन्न न होगी? उनके स्वजातिके पाखंडी लोग जिस समय उनको नाना-प्रकारकी यातनाएँ दे रहे थे, वे उनकी आध्यात्मिक दुर्दशा लक्ष्यकर सजल नयनोंसे भगवान्के चरणोंमें प्रार्थना कर रहे थे—'हे जगदीश्वर! हे गोपी जनवल्लभ! मुझे मारनेवाले अत्यन्त अबोध

हैं। ये आपकी गम्भीर लीलाको समझनेमें असमर्थ हैं। इसीलिये ये लोग आपके इस दासके ऊपर अत्याचार कर रहे हैं। आप अपनी विशाल कृपासे इनकी रक्षा करें तथा इनके अन्तःकरणमें भक्तिरसका संचार करें, जिससे जीव दूसरे जीवके ऊपर अत्याचार न करें।' वैराग्यका क्या ही उत्तम आदर्श है। इसीको सच्चा वैराग्य कहते हैं।

वैराग्य दो प्रकारका होता है—पहला भोग-वासना का अभाव और दूसरा—संसार-त्याग। परमाराध्य श्रीमन्महाप्रभुजीने रामानन्दसे कहा था कि–'साधारण लोग यथार्थ वैराग्यका रहस्य नहीं समझते। वे केवल मात्र दण्ड और कमण्डलु धारण कर वैरागी सज जाते हैं। कोई-कोई संसारका परित्याग कर ही अपने को वैरागी कहते हैं और कोई-कोई बाघाम्बर पहन कर ही अपनेको संन्यासी मान बैठते हैं। किन्तु इनमें-से एक भी यथार्थ वैराग्य लक्षण नहीं है। यथार्थ वैराग्य तो वह है जिससे तत्त्व ज्ञानमें अनुराग उत्पन्न हो। भगवान्‌के चरणोंमें आत्मनिवेदन कर निष्कामभावसे अपने कर्त्तव्यकर्मोंका आचरण करना चाहिये। 'त्याग' शब्दका अर्थ समझना बड़ा ही कठिन है। कितने ही लोग 'त्याग' को श्रेष्ठ मान कर संसारका परित्याग कर देते हैं तथा जङ्गलका रास्ता लेते हैं। 'त्याग'—शब्दका अर्थ पण्डित लोग दो प्रकारसे करते हैं—पहला, विषयभोगकी कामनाका अभाव होना और दूसरा, संसार त्याग। इन दोनों अर्थोंमें 'विषय भोगकी कामनाका अभाव होना' यही श्रेष्ठ अर्थ है।

(क्रमशः)

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

मायावादकी जीवनी

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष २, संख्या ३, पृष्ठ ३४६ से आगे]

प्रकाशानन्द

श्रीचैतन्य महाप्रभुके आविर्भावसे आज तक प्रायः ४७० वर्ष हो चले हैं। उनके आविर्भावके साथ-ही-साथ वैष्णव-जगत्‌का इतिहास आमूल परिवर्त्तित होकर दिव्य आलोकसे उद्भासित हो उठा था। चेतन आलोकके सौन्दर्यसे मुग्ध होकर बहुतसे अद्वैतवादी पतंग आत्मसमर्पण करने लग गए।

प्रकाशानन्द सरस्वतीपादका समय १५ वीं शतीके अन्तिम चरण और १६ वीं शतीके प्रथम चरणके मध्य था। उस समय वे वाराणसी क्षेत्रमें मायावादके एकच्छत्र सम्राट थे। उनकी पाण्डित्य-प्रतिभाकी धाक चारों ओर फैली हुई थी। उन्होंने 'वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली' द्वारा अद्वैतवादियोंमें नयी जान डाल दी थी। चैतन्य देवने बहुत दूर श्रीधाम मायापुरसे उनके नाम और सिद्धान्तोंके विषयमें सुनकर स्नेह भरे शब्दों कहा था—

काशीते पड़ाय बेटा प्रकाशानन्द।
सेइ बेटा करे मोर अङ्ग खण्ड-खण्ड॥

[चैतन्यचरितामृत म० ३।३७]

श्रीचैतन्यदेव साक्षात् अवतारी भगवान् हैं। प्रकाशानन्द अद्वैतमतके सिद्धान्तोंके अनुसार अपने शिष्यवर्गको—भगवान् निराकर हैं, निर्विशेष हैं, इत्यादि शिक्षाएँ देते थे, जिसका तात्पर्य भगवान्‌के शरीरको न मानना अथवा उनके अंगोंको खण्ड-खण्ड करना है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी इसी विचार

को प्रकट किया था। दूसरे-दूसरे युगोंमें भगवान्‌ने अवतीर्ण होकर किन्हीं-किन्हीं अद्वैतवादियोंका विनाश किया है और किन्हीं-कन्हींको उद्धार कर वैष्णव मतमें लाए हैं। किन्तु इस युगमें करुणा-वरुणालय स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुने किसी का भी विनाश नहीं किया है। उन्होंने उनकी दुष्कृतियोंका विनाश कर—उनका हृदय परिवर्त्तन कर उन्हें या तो अपने विशुद्ध मतके अन्तर्भुक्त किया है अथवा अपनी सेवामें नियुक्त किया है। इसी लिये प्रकाशानन्द सरस्वतीपादको उद्धार करनेके लिए दल-बलके साथ वे वाराणसी उपस्थित हुए। दोनों में परस्पर शास्त्रार्थ हुआ। चैतन्य महाप्रभुजीने मायावाद—अद्वैतवादके अनगिनत दोषोंको स्पष्टरूपमें प्रकाशानन्द सरस्वतीके सामने पसार कर रख दिया। सरस्वतीपादके हजारों शिष्य निस्तब्ध होकर कठपुतली की तरह दोनोंके विचरोंको सुन रहे थे। सरस्वती-पाद श्रीमन्महाप्रभुजीकी अकाट्य युक्तियों और विचारोंके सामने झुक पड़े और उनके विचारोंकी सत्यता उपलब्धि कर उनके निकट अपना मस्तक बेच दिया।

'सेइ हइते संन्यासीर फिरे गेल मन।'

[चै० च० आ० ७।१४६]

'प्रकाशानन्द ताँर असि धरिला चरण॥'

[चै० च० म० २५।६६]

श्रीचैतन्य देवकी कृपा और प्रचारसे न केवल प्रकाशानन्द सरस्वतीपादका ही प्रत्युत वाराणसीक्षेत्रके समस्त मायावादियोंका उद्धार हुआ था। यहाँ तक ही नहीं, शंकरक्षेत्र वाराणसी नगर उस समय निमाई-क्षेत्र नदियानगरके रूपमें परिणत हो गया था। कविराज गोस्वामी लिखते हैं—

संन्यासी पण्डित करे भागवत विचार।
वाराणसीपुर प्रभु करिला निस्तार॥
निजलोक लञा प्रभु आइला वासा घर।
वाराणसी हइल द्वितीय नदीया नगर॥

[चै० च० म० २५।१२६-१६०]

अर्थात् चैतन्य महाप्रभुजी ने समस्त वाराणसी का उद्धार कर दिया। वे संन्यासी, जो केवल वेदान्त आदि ग्रन्थोंका ही अध्ययन करते थे, महाप्रभुजीकी कृपासे अब श्रीमद्भागवतका भी रसास्वादन करने लगे। इस प्रकार वाराणसीनगर द्वितीय नदिया नगरके रूपमें परिणत हो गया।

इस प्रकार चैतन्यदेवने मायावादी संन्यासी प्रकाशानन्द सरस्वतीको वेदान्तके अचिन्त्य भेदाभेद-वाद" सिद्धान्तमें प्रतिष्ठित कर काशीमें मायावाद रूप दुष्कृतिका विनाश किया था।

वासुदेव सार्वभौम

वाराणसीमें जिस प्रकार मायावादी संन्यासी समाजके अधिपति प्रकाशानन्द सरस्वती थे, उसी प्रकार श्रीक्षेत्र-जगन्नाथपुरीके अद्वैतवादियोंपर वासुदेव सार्वभौमका एकाधिपत्य विराजमान था। वे छः दर्शनों तथा समस्त शास्त्रोंके अगाध विद्वान् थे विशेष कर मायावादके सर्वप्रधान पण्डित थे। इसलिए वे सार्वभौम (चक्रवर्त्ती राजा) के नामसे प्रख्यात थे। श्रीचैतन्यदेव पुरीमें रहते समय उनके निकट वेदान्तका पाठ सुननेके लिए उपस्थित हुए। सार्वभौमजीने सात दिनों तक वेदान्तकी अद्वैत अर्थात् शंकराचार्यकृत व्याख्या सुनाकर चैतन्यदेवको उसे समझानेकी प्रचुर चेष्टा की। महाप्रभुजी भी सात दिनों तक बिलकुल मौन धारणकर प्रतिदिन उनकी वैसी व्याख्या सुनते रहे। महाप्रभुजीको सात दिनों तक बिलकुल मौन देखकर सार्वभौम महोदय ने आठवें दिन पाठके सम्बन्धमें उनको मन्तव्य प्रकाश करनेको कहा। इस प्रसंगमें हम पाठकवर्गको श्रीचैतन्यचरितामृतके छठवें परिच्छेदकी आलोचना करने के लिए अनुरोध करता हूँ। चैतन्य महाप्रभुजी ने सार्वभौमके सिद्धान्तोंमें नाना प्रकारके दोष दिखला कर उन्हें अपने मतमें आकर्षण कर लिया। सार्व-भौमजीने मायावादकी असारता उपलब्धि कर उसका परित्याग कर दिया और महाप्रभुके शरणागत हुए—

आत्मनिन्दा करि लैल प्रभुर शरण।
कृपा करिवारे तबे प्रभुर हैल मन॥
देखि 'सार्वभौम दण्डवत करि' पड़ि।
पुनः उठि स्तुति करे दुई कर युड़ि॥
प्रभुर कृपाय ताँर स्फुरिल सब तत्त्व।
नाम-प्रेमदान आदि वर्णेन महत्त्व॥

चै० च० म० ६।२०१,२०४, २०५

भाव यह है कि सार्वभौमजी अपने मतकी असारता उपलब्धि कर अपनेको बार-बार धिक्कार देते हुए महाप्रभुके चरणोंमें शरणागत हुए। उनकी दीनता देखकर श्रीमन्महाप्रभुकी इन पर कृपा करने की इच्छा हुई। उन्होंने अपनी षड्भुज-मूर्त्ति उनके सामने प्रकट किया। उसे देखकर सार्वभौमने पृथ्वी पर गिर कर साष्टांग दण्डवत किया और फिर उठ कर दोनों हाथोंको जोड़ कर उनकी नाना प्रकारसे स्तुति करने लगे। महाप्रभुकी कृपासे उनके हृदयमें समस्त तत्त्वोंकी स्फूर्ति हुई, जिससे वे महाप्रभुजीके नाम-प्रेमदानकी लीलाका महत्त्व वर्णन करने लगे।

इस तरह चैतन्यदेवके प्रबल प्रचारसे मायावाद सम्पूर्णरूपसे विलुप्त हो गया और पुरी स्थित शंकराचार्यका गोवर्द्धन मठ भूगर्भमें समाधि ले लिया।

इसी समय श्रीचैतन्यदेवके भक्तोंने भी उनका पदाङ्क अनुसरणकरके उनकी प्रीतिके लिए मायावादके विनाश कार्यमें उनका खूब साथ दिया। महाप्रभुके सम्प्रदायके अतिरिक्त दूसरे सम्प्रदायके वैष्णव आचार्योंने भी श्रीचैतन्यदेवको साक्षात् भगवान् जानकर उनके पदांकपूत वैष्णव-सिद्धान्तोंके सामने अपना मस्तक झुकाकर उनकी लीलामें सहायता प्रदान की थी। इनमें सनक सम्प्रदायके आचार्य केशवकाश्मीरी और और विष्णुस्वामी सम्प्रदाय अर्थात् श्रीधरस्वामी सम्प्रदायके आचार्य श्रीवल्लभाचार्यके नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं। इन दोनों आचार्योंने ही श्रीचैतन्य देवके निकट शिक्षा प्राप्त की थी। दिग्विजयी केशव काश्मीरीकी कहानी कौन नहीं जानता? उन्होंने दिग्विजय करने जाकर श्रीचैतन्यदेवके निकट श्रीभागवत-धर्मकी शिक्षा प्राप्त की थी। अन्तमें उन्होंने 'वेदान्त कौस्तुभ' आदि ग्रन्थोंकी रचना कर निम्बार्क सम्प्रदायकी खूब पुष्टि की है। वर्त्तमान समयमें निम्बार्क सम्प्रदायके अन्तर्गत जो ग्रन्थ दीख पड़ते हैं, उन्हें श्रीचैतन्देवके प्रचारका ही फल समझना चाहिये।

उपेन्द्र सरस्वती

काशीके उपेन्द्र सरस्वती अद्वैतवादके एक प्रकाण्ड विद्वान् थे। श्रीवल्लभाचार्यने इनको शास्त्रार्थ में पराजित किया था जिससे उक्त सरस्वतीजीका हृदय श्रीवल्लभाचार्यके प्रति हिंसा से परिपूर्ण हो गया। वे श्रीवल्लभाचार्य पर नाना-प्रकारसे अत्याचार करने लगे। वल्लभाचार्यने अपना जीवन संकटमय जानकर उस समय काशीका परित्याग कर दिया था। इसके अतिरिक्त वल्लभाचार्यजीने विजयनगरमें भी एक कट्टर मायावादी—अद्वैतवादीको शास्त्रार्थमें पराजित कर मायावादका झण्डा उखाड़ फेंका था। इस प्रकार वल्लभाचार्यने मायावादका विनाश कर श्रीचैतन्यदेवकी मनोऽभिष्ट सेवामें अपना हाथ बँटाया था।

श्रीचैतन्यदेव और व्यासराय

श्रीचैतन्य महाप्रभुके साथ मध्व सम्प्रदायके तत्कालीन प्रधान-प्रधान आचार्योंका मिलन हुआ था और आपसमें साध्य-साधन तत्त्वोंको लेकर आलोचना भी हुई थी। उस समय उड़ुपीके अध्यक्ष रघुवर्य आचार्य थे। व्यासराय रघुवर्य आचार्यके पीछे उड़ुपी मठके अध्यक्ष हुए थे। वे अति दीर्घायु थे। वे न्याय शास्त्रके बड़े अगाध विद्वान् थे। यही कारण है कि आज भी पण्डित समाजमें उनकी पूजा होती है। किसी-किसीका मत है वे सन् १४८६ से १५३६ई० तक जीवित थे तथा अपने जीवनके अन्तिम ५० वर्ष उड़ुपीके अध्यक्ष रहे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उनके समयके सम्बन्धमें मतभेद होने पर भी चैतन्यदेवके साथ उनकी भेंट हुई थी—इसे अनुमान करने में कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि चैतन्यदेव लगभग १५१५ ई० में उड़ुपी गये थे। उस समय आचार्य

व्यासराय वहाँके मध्वमठके अध्यक्ष पद पर वर्तमान थे। श्रीचैतन्यदेव स्वयं भगवान् होने पर भी आध्यक्षिक पण्डित समाज उनको न्याय शास्त्रका अधिदेवता मानता था। उनके न्यायशास्त्रकी पाण्डित्य-प्रतिभाकी चर्चा सुनकर रघुवर्यतीर्थ और व्यासराय आदि मनिषवृन्द उनका दर्शन करनेके लिए उपस्थित हुए थे। व्यासराय भी न्यायशास्त्रके प्रकांड विद्वान् थे। महाप्रभुजीके साथ भेंट होने पर उन्होंने उनसे न्याय-शास्त्रके सम्बन्धमें प्रचुर ज्ञान अर्जन किया था। व्यासरायके द्वारा रचित 'न्यायमृत' ग्रन्थ उसीका फल प्रतीत होता है। चैतन्यदेव और उनके अनुगत जनोंके प्रचण्ड-प्रचारसे मायावादका जो सार्वभौम विचार जल कर भस्म-स्तूपमें परिणत हो गया था, वही व्यासरायके 'न्यायमृत' के प्रबल प्रवाह में बहकर अपना अस्तित्व भी खो देनेके लिए बैठा था। इस समय अद्वैतवादीकुल विपद्ग्रस्त होकर प्राणोंकी रक्षाके लिए 'विपदे मधुसूदन' की आर्तनाद करने लगा था।

(क्रमशः)

शरणागति

आत्मनिवेदन—अहंतास्पद देहीसमर्पण (वाचिक)

(ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर)

देह, गेह, सर्वस्व सब जो कछु है प्रभु, मोर।
पाद-पद्म में तव कियो अर्पण नन्दकिशोर॥
वरण किए तव श्रीचरण, जीवन-मरण मँझार।
सम्पद, विपदा में गयो मम दायित्व अपार॥
मारो अथवा राखियो जो इच्छा तव नाथ।
नित्य दास हौं मैं सदा अधिकृत तेरे हाथ॥
जन्म देन की होय जो इच्छा देव, तुम्हार।
भक्त-भवन में जन्म तो दीजो करुणागार॥
जहाँ तुम्हारे दास तहँ कीट-जन्म स्वीकार।
नहीं बहिर्मुख ब्रह्म को जन्म चहौं बेकार॥
भुक्ति-मुक्ति की कामना-रहित तुम्हारे भक्त।
तिन को सङ्ग लहौं रहौं तिन ही में अनुरक्त॥
तुमहीं जननी त्यों जनक, दयित, तनय सब मोर।
प्रभु, पति, गुरु तुम सर्वमय साँचे नन्दकिशोर॥
भक्तिविनोद कहै प्रभो ! देहु विनय पै कान।
राधानागर, आप हैं गुण-आगर मम प्राण॥

निम्बार्कोंका विक्षोभ

(सत्य-प्रचारमें बाधा)

हम सूचित कर रहे हैं कि हमने हिन्दी भाषामें एकमात्र पारमार्थिक मासिक 'श्रीभागवत-पत्रिका' के वर्ष २, संख्या २ पृष्ठ ३२६-३२७ में "श्रीनिम्बादित्य और निम्बार्क एक व्यक्ति नहीं हैं" शीर्षक लेखमें यथार्थ गवेषणामूलक एक पत्र लेखके रूपमें प्रकाश किया है। उक्त लेख सर्वतोभावेन ऐतिह्यमूलक है। इसकी विस्तृत आलोचना हम क्रमशः इसी पत्रिकामें प्रकाश करेंगे। खेदकी बात है कि श्रीव्रजबिहारी शरण नामक निम्बार्क सम्प्रदायके (?) जनैक व्यक्तिने उक्त प्रबन्धको पढ़कर बड़ा ही क्षोभ प्रकाश किया है। हम किसीके अन्तःकरणको चोट पहुँचाने अथवा किसी भी सम्प्रदाय पर आक्रमण करनेके उद्देश्यसे कोई भी लेख प्रकाशित नहीं करते। गवेषणामूलक समालोचना शिक्षित समाजमें सर्वदा ही आदरणीय होती है। उससे किसीका दिल दुःखित होनेसे हमें भी उसके लिये दुःख होता है। निम्बादित्य सम्प्रदाय एक अत्यन्त प्राचीन वैष्णव सम्प्रदाय है—ऐसा पुराण आदिमें भी उल्लिखित है। किन्तु निम्बार्क सम्प्रदाय अधिक प्राचीन सम्प्रदाय नहीं है; यह सम्प्रदाय १५वीं शतीमें उद्भूत हुआ है—ऐसा बहुतसे ऐतिहासिकोंका लिखित अभिमत है। हम क्रमशः इस रहस्यपूर्ण तथ्यको इसी पत्रिकामें प्रकाशमें लावेंगे। साथ ही हम इतिहास, साहित्य और दर्शनके आधार पर विभिन्न निबन्धों द्वारा इस बातको स्पष्टरूपमें दिखलायेंगे कि चैतन्यमहाप्रभुके सम्प्रदायके आचार्यों द्वारा श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय कितनी दूर तक प्रभावान्वित हुआ है। हम निम्बार्क सम्प्रदायके वैष्णवोंके प्रति विशेष श्रद्धापूर्वक निवेदन करते हैं कि वे हमारे इन लेखोंका यथायथ वैष्णवोचित नियमोंके अनुसार लेखनी द्वारा प्रतिवाद करें। हम उनके ऐसे प्रतिवादोंको आदरपूर्वक ग्रहण करेंगे। ईर्ष्या अथवा विद्वेषमूलक क्रिया-कलापसे कोई लाभ नहीं होता। हम आशा करते हैं, वे लोग इन निबन्धोंको पढ़कर दुःखित न होंगे। उन्होंने रजिस्ट्री पत्र द्वारा जिस विक्षोभका परिचय दिया है, हम उसे किसी भी धर्म-सम्प्रदायके पक्षमें सर्वतोभावेन असङ्गत समझते हैं। हम धार्मिक सर्वसाधारणकी जानकारीके लिये उनका रजिस्ट्री पत्र तथा उसके उत्तरमें दिया गया पत्र—दोनोंको ज्यों-का-त्यों नीचे मुद्रित कर रहे हैं। सुधी पाठकवर्ग इन्हें पाठकर विचार करेंगे।

श्रीमान् व्रजबिहारी शरणजीका पत्र—

Gautam Rishi-Barahghat,
Vrindaban, 23rd August, 56.

To,

Shri Tridandiswami Srimat Bhaktivedant Narayan Maharaj,
Editor and Publisher of 'BHAGBAT PATRIKA',
Sri Keshabji Gourya Math, Mathura.

Dear Sir,

The followers of 'Sri Nimbark Vaishanava Sampradaya of India are seriously offended at the publication in your monthly journal "BHAGBAT PATRIKA" in its printed copy of Ashar, Sambat 2013 on pages 326 and 327 therof under the heading "Sri Nimbaditya Ayur Nimbark Ek Byakti Nahi Haya" (श्रीनिम्बादित्य और निम्बार्क एक व्यक्ति नहीं हैं) of an article in Hindi language and character by you and upon your sole responsibility.

The said article which is expressive of your deep-rooted personal malice is absolutely without any foundation whatsoever and has simply been written and published by you to lower in the estimation of the Hindu Public of the Country the ancient renowned "Nimbark Vaishnav Sampradaya" of the Country and its eminent Acharyas. Your statement about Shri Keshub Kashmiri Ji and Srinibash Ji as contained therein are not only false but entirely malicious.

Your said article has caused immense damage to the reputation of the said Sampradaya and has seriously wounded the feelings of its numerous followers and the value of such damages, though inestimable, has been, for the purpose of contemplated legal proceedings, valued at Rs. 10,000/-.

Under the circumstances, I am directed to call upon you which I hereby do, to forthwith take immediate requisite steps to delete the said article from the said copy and other copies thereof and to tender unqualified apology for your said wrongful action and make good the damages suffered therefor.

If you neglect or fail to comply with my said requisitions within seven days from the date hereof, the said Association shall take legal proceedings against you, civil or criminal, or both, as they may be advised, without any further reference.

Yours faithfully,

Sd. Brajbihari Saran,
Convenor, Sub-Committee.

उक्त पत्रके उत्तरमें त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त नारायणजी—

SREE KESHABJI GAUDIYA MATH,
KANS TILLA, MATHURA.
Dated 27th August 1956.

Dear Sir,

Very sorry to let you know that a letter dated 23-8-56 (posted on 24-8-56) under a registered cover, addressed to Sree Tridandi Swami Srimat Bhakti Vedant Narayan Maharaj, designating him as "Editor & Publisher-Bhagabat Patrika" is received under protest.

The addressee is not in any way guilty of or liable for any of the charges-criminal or civil-and does not admit any content of the letter as you have alleged.

If you are wrongly, improperly and illegally willing to enter into any litigation, you are at liberty to do so at your own risk.

Yours truly,
Sd. Swami B. V. Narayan

To,
Sree Brajbihari Saran,
Gautam Rishi, Barahghat, Vrindaban (Mathura).

गीताकी वाणी

चतुर्थ अध्याय

दूसरे और तीसरे अध्यायमें ज्ञानयोगको उपेय-स्वरूप और कर्मयोगको उपायस्वरूप बतलानेके बाद भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र युक्तियोंके आधारपर अर्जुनको यह समझाते हैं कि ये योग आधुनिक नहीं हैं, प्रत्युत पुरातन और अविनाशी हैं, जो परम्परा क्रमसे आज-तक चले आरहे हैं। उन्होंनेही सृष्टिके प्रारम्भमें इन योगोंका उपदेश क्षत्रिय वंशके आदि बीज-स्वरूप सूर्यदेवको दिया था। फिर सूर्यद्वारा इनके पुत्र मनु और मनु द्वारा इनके पुत्र इक्ष्वाकु क्रमशः प्राप्त हुए। इस तरह परम्परानुक्रमसे इसे राजर्षियोंने प्राप्त किया था।

द्वापरके अन्तमें प्रजा इन्द्रिय-परायण और चंचल चित्त होनेके कारण उपयुक्त अधिकारियोंके अभावमें वह योग लुप्त-सा हो गया। उसी पुरातन योगका उपदेश, जब श्रीकृष्ण अर्जुनके प्रति करने लगे, तब अर्जुनके मनमें एक सन्देह पैदा हुआ। असलमें वह संदेह अर्जुनका निजी संन्देह नहीं, सर्वसाधारणका है, मायामुक्त अर्जुनने तो लोक-कल्याणकी दृष्टिसे उसे भगवान्की ही इच्छासे केवल निवेदन करनेका नाट्यमात्र रचा था। 'भगवन्! आपका जन्म तो द्वापरके अंतमें अभी कुछ ही दिन बीते हुआ है। और सूर्य तो उससे अत्यन्त प्राचीन हैं; अतः ऐसी अवस्थामें सृष्टिके प्रारम्भमें आपने उस योगका उपदेश कैसे किया?' —यही अर्जुनका प्रश्न था। भगवत् तत्त्व न जाननेवालोंको प्रायः ऐसी शंकाएँ हुआ करती हैं। श्रीकृष्ण ही भगवान् हैं और वे नित्य सर्वादि और अंशी हैं—अधिकांश लोग इस तत्त्वको नहीं जानते। भगवान् श्रीकृष्ण उस प्रश्नके उत्तरमें अपनी नित्यता और अपने अव-तारका प्रसंग वर्णन करते हैं।

जगत्में मायाबद्ध जीवोंका जैसे जन्म होता है, भगवान्का जन्म वैसे नहीं होता। वे जन्म-मृत्यु-रहित होकर भी अपनी नित्या-प्रकृतिका—आत्ममायाका आश्रय कर इस जगत्में प्रकट होते हैं। वैदिक वर्णा-श्रम धर्ममें विप्लव उपस्थित होनेपर उनको अवतार लेनेकी आवश्यकता होती है। जब अधर्म परायण स्वेच्छाचारी असुर लोग वैदिक-धर्मका नाश करने पर तुल जाते हैं तथा अन्यान्य देवतावर्ग उन असुरों को दमन करनेमें असमर्थ होकर भगवान्की शरण लेते हैं, उस समय भगवान् अवतीर्ण होकर असुरों का संहार कर सनातन धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा करते हैं। इस तरह सनातन धर्म पुनः प्रतिष्ठित होनेसे संतोंके सभी भजन-कंटक दूर हो जाते हैं। वैदिक धर्मको ही सनातनधर्म, नित्यधर्म, जैवधर्म, भागवतधर्म अथवा वैष्णवधर्म कहते हैं। यही एकमात्र ऐसा धर्म है, जो नित्यकाल तक वर्त्तमान रहता है। यही कारण है कि 'यदा यदाहि धर्मस्य' श्लोकमें 'धर्मस्य' एक-वचनका पद व्यवहृत हुआ है। इसलिए वैष्णव धर्म-के अतिरिक्त जगत्में जितने धर्म चल रहे हैं, वे सभी अपधर्म, उपधर्म अथवा अनित्य धर्म हैं। ॐ विष्णुपाद श्रीलभक्ति विनोद ठाकुरने श्रीमद्भागवतके 'धर्म्मः प्रोज्झित कैतवः' श्लोकका अनुसरण करते हुए लिखा है—

> 'पृथिवी ते यत मत धर्म नामे चले।
> भागवत कहे ताहा परिपूर्ण छले।

अर्थात्, जगत्में धर्मके नामपर जितने मत प्रच-लित हैं, वे सभी छलसे भरे हुए हैं—स्वयं श्रीमद्भा-गवतका ऐसा सिद्धान्त है।

नित्य धर्मका पालन करनेमें असमर्थ होनेसे इन्द्रिय-परायण असुर स्वभावके लोग अपनी सुवि-

धाके लिए स्वेच्छाचारी होकर अपना स्वतंत्र मत चलाते हैं। किन्तु उससे जीवोंका नित्य-मंगल नहीं होता। इसीलिए भगवान् समय-समयपर आविर्भूत होकर इन अनित्य धर्मोंकी असारता दिखलाया करते हैं। श्रीमद्भागवतमें इसके प्रचुर दृष्टान्त मिलते हैं। श्रीमद्भागवतका धर्मही भागवत-धर्म या वैष्णव धर्म है।

भगवान्की महिमाको न जाननेवाले मूढ़ व्यक्तिगण श्रीकृष्णचन्द्रको मनुष्य मानते हैं। इसलिए भगवान् कहते हैं कि उनके जन्म और कर्म अलौकिक हैं। उनको बद्धजीवोंके समान न तो गर्भकी यातना ही भोग करनी पड़ती है और न उनको कर्मफलके अधीन होकर नाना प्रकार की योनियोंमें ही भटकना पड़ता है। बल्कि वे स्वेच्छापूर्वक आविर्भूत हुआ करते हैं। 'सम्भवाम्यात्ममायया' श्लोकमें 'मायया' का अर्थ वैष्णव महाजन—'जीवोंके प्रति कृपा करके' से लगाते हैं। जो लोग इस तत्त्वको जान लेते हैं, वे विषयोंके प्रति आसक्तिभाव और क्रोधका परित्याग कर भगवान्के चरणोंमें सर्वतोभावेन अपनेको समर्पण कर देते हैं—तथा ज्ञान और तपके प्रभावसे तत्सन्निधि या भगवत्प्रेम प्राप्त करते हैं। 'भाव' शब्दका अर्थ 'रति' से है। जो भक्त जिस भावसे मेरी शरण ग्रहण करता है, भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण करनेवाले भगवान् भी उनके प्रति वैसी ही कृपा किया करते हैं। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच प्रकारके भाव वैष्णव-शास्त्रोंमें पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतमें काम, द्वेष और भय आदि भावोंके द्वारा भी भगवत्कृपा प्राप्त होनेका उल्लेख पाया जाता है—

> कामाद्द्वेषाद्भयात् स्नेहाद् यथा भक्त्येश्वरे मनः।
> आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः॥
> गोप्यः कामाद्भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
> सम्बन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो॥
> (श्रीमद्भा० ७।१।३०।३१)

—एक नहीं, अनेकों मनुष्य कामसे, द्वेषसे, भयसे, और स्नेहसे अपने मनको भगवान्में लगाकर एवं अपने सारे पाप धोकर उसी प्रकार भगवान्को प्राप्त हुए हैं, जैसे भक्त भक्तिसे। गोपियोंने काम अर्थात् प्रेमसे, कंसने भयसे, शिशुपाल-दन्तवक्त्र आदि राजाओंने द्वेष (शत्रुता) से, यदुवंशियोंने परिवारके सम्बन्धसे, पाण्डवोंने स्नेहसे और नारद आदिने भक्तिसे अपने मनको भगवान्में लगाकर उन्हें प्राप्त हुए हैं।

मनुष्य सब प्रकारसे मेरे भजन-मार्गका ही अनुसरण किया करते हैं'—गीताके इस वचनसे बहुतेरे लोग विभिन्न प्रकारकी धारणाएँ करते हैं, फल-स्वरूप नानाप्रकारके भ्रान्त मतोंकी सृष्टि करते हैं। 'जितने मत उतने पथ' नामक मतवाद ही इसका प्रकृष्ट उदाहरण है। परन्तु यह एक भित्तिहीन और सिद्धान्त-विरुद्ध विचार है। कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि किसी भी मतके अनुसार जिस किसी भी देवता, यक्ष, राक्षस, भूत अथवा प्रेतकी पूजा क्यों न की जाय, उससे भगवत्प्राप्ति हो सकती है। किन्तु यह उनकी भ्रान्त धारणा है। क्योंकि गीतामें स्वयं भगवान्ने 'येऽप्यन्यदेवता भक्ताः' और 'कामैस्तैस्तैर्हृत ज्ञानाः' श्लोकोंसे उक्त विचारका खण्डन कर दिया है। आगे ७ वें और ९ वें अध्यायमें इस विषयकी विशेषरूपसे आलोचनाकी जायगी।

सत्त्व, रज और तम गुणोंके तारतम्यसे जीवोंका स्वभाव नाना-प्रकार का होता है। इसलिये भगवान्ने गुण और कर्मके विभागसे उनमें चार वर्णोंकी सृष्टि की है। अठारहवें अध्यायमें प्रत्येक वर्णोंके कर्म आदि स्थिर किये गये हैं। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान्ने पक्षपात करके किसीका स्वभाव सम और किसीका विषम बनाया है; बल्कि सभी लोग अपने-अपने पूर्व जन्मके कर्म और स्वभावके अनुसार ही जन्म ग्रहण करते हैं तथा अपने-अपने स्वभावके अनुरूप ही वर्ण लाभ करते हैं। अतः भगवानमें विषमता अथवा पक्षपातका आरोप करना ठीक नहीं। वेदान्त सूत्रमें ऐसे विचारोंका स्पष्ट खंडन किया गया है—

'वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति'

भगवान् विश्वकी रचना आदि कार्योंके कर्त्ता होकर भी उन कर्मोंमें या कर्म-फलोंमें आसक्त नहीं होते। क्योंकि वे आत्माराम और सब तरहसे पूर्ण हैं। इस प्रकार जो उनको तत्त्वसे जान लेता है, वह सर्वथा मुक्त हो जाता है।

शास्त्रमें गुण और कर्मके आधार पर वर्ण निरुपण किये जानेके अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। अतएव केवलमात्र जन्म द्वारा वर्ण निरुपण करना—शास्त्रोंका उद्देश्य नहीं। यही कारण है कि प्रत्येक वर्णोंका लक्षण अलग-अलग दिया गया है। शम,दम,तपस्या, पवित्रता, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ईश्वरकी भक्ति, दया और सत्य—ये ब्राह्मणवर्णके स्वाभाविक धर्म हैं। तेज,बल, धीरता, वीरता, दक्षता, सहनशीलता, दान और लोकनियन्तृत्व क्षत्रियोंके स्वाभाविक कर्म हैं। कृषि, गोरक्षा, और वाणिज्य—ये वैश्यवर्णके स्वाभाविक कर्म हैं तथा तीनों वर्णोंकी सेवा करना ही शूद्रोंका स्वाभाविक कर्म है। श्रीमद्भागवत्में भी 'गुणैर्विप्रादयः पृथक्' श्लोकमें गुणोंके अनुसार ही वर्ण निर्देश करनेकी व्यवस्था दी गयी है। जन्म द्वारा वर्ण निरुपण करनेसे बहुधा भूल हो जाया करती है, इसलिये श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

'यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥'

जिस पुरुषके वर्णको बताने वाला जो लक्षण कहा गया है, वह यदि दूसरे वर्णवालोंमें भी मिले तो उसे भी उसी वर्णका समझना चाहिये। अर्थात् ब्राह्मणवर्णका लक्षण यदि किसी अन्य वर्णके एक व्यक्तिमें पाया जाय तो उसे भी ब्राह्मण मानना चाहिये—यही विधि है। उपर्युक्त श्लोककी टीकामें श्रीधर स्वामीने लिखा है कि 'शमादिभिरेव ब्राह्मणादि व्यवहारो मुख्यः, न जातिमात्रात्।' शम आदि गुणों के आधार पर ही ब्राह्मण आदि वर्ण स्थिर करना—मुख्य विधि है। किन्तु साधारणतः जाति द्वारा ब्राह्मणत्व आदि निरुपण करनेकी जो प्रथा दीख पड़ती है, वह शुद्ध व्यवस्था नहीं, केवल जातिके आधार पर वर्ण निर्देश करना उचित नहीं।

गुण और कर्मके अनुसार भगवान्ने चार वर्णों की सृष्टि की है। फिर भी उनमें कर्त्तृत्वाभिमान न होनेके कारण वे अकर्त्ता ही हैं। जीव अपने-अपने कर्मोंके अनुरूप पाप-पुण्यके फलसे देवता, मनुष्य अथवा अन्यान्य योनियोंमें जन्म लेता है तथा उन्नति और अवनतिको प्राप्त होता रहता है। किन्तु भगवान् सृष्टि-व्यापारमें कर्त्ता होनेपर भी न तो उनको कर्म-फलमें स्पृहा होती है और न वे कर्ममें लिप्त ही होते हैं। इसलिए वे कभी भी कर्मफलके अधीन नहीं होते। इस प्रकार भगवत्तत्त्वको भलीभाँति जान लेनेपर कर्म-बन्धनसे मुक्त हुआ जा सकता है। पूर्व-कालमें होनेवाले बहुतसे मुमुक्षुओंने भी इस तत्त्वको भली-भाँति जानकर उपर्युक्त प्रकारसे कर्मोंका आचरण करते हुए कर्म-बन्धनसे मुक्ति पायी है। इसलिए अतत्त्वज्ञ व्यक्तियोंके लिये चित्त शुद्धिके लिए तथा तत्त्वज्ञानी पुरुषोंके लिए लोक-शिक्षार्थ शास्त्रीय कर्मों का आचरण करना कर्त्तव्य है। कर्मका स्वरूप अत्यन्त गूढ़ है। इस विषयमें विद्वान् पुरुष भी मोहित हो पड़ते हैं। इसलिए भगवान् कर्म, अकर्म और विकर्मके विषयमें उपदेश दे रहे हैं। शास्त्रीय कर्त्तव्यों के आचरणको कर्म, उसके विपरीति आचरणको विकर्म और कर्म-संन्यास अर्थात् शास्त्र-विहित कर्मों को न करनेको अकर्म कहते हैं। कर्मके इन तीन तत्त्वोंको भलीभाँति न जाननेसे यथार्थ कर्मका आचरण करना संभव नहीं है। जो मुमुक्षु व्यक्ति अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए अनुष्ठित कर्मको कर्मके रूपमें न देखकर उसको ज्ञान समझते हैं (क्योंकि ऐसे कर्म से ही ज्ञान उत्पन्न होता है) और उस ज्ञानको कर्मसे उत्पन्न होनेके कारण कर्मके रूपमें दर्शन करते हैं, वे पण्डित हैं, सब कर्मोंको करनेवाले हैं तथा मोक्षके अधिकारी हैं। भगवान् पूर्वोक्त विषयको और भी स्पष्टरूपसे समझानेके लिए कहते हैं। कर्म—आत्म-ज्ञानके उद्देश्यसे किये जानेपर कामना और संकल्पसे रहित होता है। इसलिए उसका दोष उस ज्ञानाग्नि द्वारा दग्ध होजाता है। इसलिए ऐसे कर्मी पुरुषको बुद्धिमान् लोग पण्डित कहते हैं। जो कर्मफलकी आसक्तिको परित्याग कर नित्यतृप्त और निराश्रय

अर्थात् देह आदिमें अभिमानसे रहित होता है, वह कामनाशून्य, सब प्रकारके परिग्रहका त्याग करनेवाला तथा जितेन्द्रिय पुरुष शरीर धारणोपयोगी समस्त प्रकारके कर्मोंको करता हुआ भी कुछ नहीं करता है, क्योंकि उसके सारे अनुष्ठान निष्काम होते हैं।

बिना किसी चेष्टाके अपने आप प्राप्त हुई केवल शरीर धारणोपयोगी वस्तुमें ही सन्तुष्ट रहनेवाले, शीत ग्रीष्म, सुख-दुख, जय-पराजय और सिद्धि-असिद्धिमें सम भाववाले, द्वन्द्वातीत और मत्सरता-रहित पुरुषके कर्म संसार बन्धनका हेतु नहीं बनते। निष्काम और रागद्वेषसे रहित व्यक्तिका आत्मज्ञानके उद्देश्यसे विष्णुकी आराधना रूपकर्म संसार-बन्धन का कारण नहीं होता, प्रत्युत् मुक्तिका हेतु होता है। उससे उसका कर्म-बन्धन खुल जाता है।

यज्ञादि क्रियाएँ बहुत ही कष्टसाध्य व्यापार हैं। देवताओंके उद्देश्यसे द्रव्योंको त्याग करनेका नाम यज्ञ या याग है। अग्निमें द्रव्यको देनेका नाम हवन है। जो द्रव्य देवताओंके उद्देश्यसे हवन किया जाता है, उसे हविः कहा जाता है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण कार्यका नाम है—कर्म और उसका फल है- स्वर्ग प्राप्ति। यदि ऐसा कर्म परम पुरुषके अनुसंधानके उद्देश्यसे किया जाय तो उसे ही ज्ञान कहते हैं। हविः अर्पण रूपकर्म जिसके द्वारा सम्पादित होता है वह होता ब्रह्मसे उत्पन्न होता है, हवि भी ब्रह्मसे उत्पन्न होती है तथा क्रति अर्थात् कार्य भी ब्रह्मभूत होता है। ब्रह्मभूत अग्निमें ब्रह्मभूत होता हवन कार्य करता है। जो सारे कर्मोंको ब्रह्मात्मक जानकर समस्त पदार्थोंको ब्रह्ममय दर्शन करते हैं, वे ब्रह्मभूत स्वरूप प्राप्त कर लेते हैं—आत्मज्ञान लाभ करते हैं।

अधिकारियोंके भेदसे यज्ञ नाना प्रकारके होते हैं। इन्द्र और वरुणादि देवताओंके उद्देश्यसे किये गये यज्ञको दैवयज्ञ कहते हैं। 'तत्' पदार्थ रूप ब्रह्माग्निमें 'त्वम्' पदार्थ रूप जीवके समर्पणको ज्ञानयज्ञ कहते हैं। इन्द्रिय संयमरूप अग्निमें इन्द्रियोंको समर्पण करनेको तथा इन्द्रियरूप अग्निमें इन्द्रियोंसे भोगे जाने वाले विषयोंके समर्पणको योगयज्ञ कहते हैं। द्रव्य-दानरूप यज्ञको द्रव्य-यज्ञ और चान्द्रयण आदि कष्ट-पूर्ण यज्ञोंको तपोयज्ञ कहते हैं। वेदपाठ आदिको स्वाध्याय यज्ञ, शास्त्रोंके अर्थ धारणको ज्ञानयज्ञ और प्राण-आपान आदि वायुकी गति निरोधको अष्टाङ्ग योगयज्ञ कहते हैं। इन यज्ञोंको करनेवाले सभी अनुष्ठाता यज्ञोंद्वारा पापोंका नाश करते हैं तथा यज्ञ-से बचे हुए अमृतको खाकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त कर लेते हैं। यज्ञरहित पुरुषके लिये परलोककी प्राप्ति तो दूर रहे, अल्प सुखकर मनुष्यलोक प्राप्त करना भी असम्भव है। द्रव्यमय यज्ञकी अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है; क्योंकि श्रौत और स्मार्त्त सब कर्मों-का फल ज्ञानके अन्तर्गत आ जाता है। यह तत्त्वज्ञान केवलमात्र सत्संगसे प्राप्त किया जा सकता है। आत्म-ज्ञानी साधु पुरुषको प्रणाम करनेसे, उनसे तत्त्व-जिज्ञासा किये जानेसे तथा उनकी सेवा करनेसे, तत्त्वज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। आत्मज्ञान प्राप्त होने पर फिर बन्धु-बान्धवोंके वधजन्य मोह कैसे हो सकता है? वैसी अवस्था प्राप्त होने पर—आत्मा और शरीर भिन्न हैं, शरीर उसी आत्माकी उपाधि (आवरण) है तथा ये सभी परम कारणरूप भगवत् स्वरूपमें तदीयशक्तिके कार्यके रूपमें अवस्थित हैं—ऐसा जाना जायगा।

ज्ञानके प्रभावसे अत्यन्त पापी भी सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि इन्धन को भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञानाग्नि पाप राशिको जलाकर भस्म कर देती है। इसलिए ज्ञानके समान पवित्र अन्य कुछ भी नहीं है। गुरुके वचनोंमें दृढ़ श्रद्धालु, गुरुनिष्ठ और जितेन्द्रिय पुरुषही वैसे ज्ञानका अधिकारी होता है। ऐसा ज्ञान प्राप्त होनेपर शीघ्र ही पराशान्ति प्राप्त हो जाती है। किन्तु इस आत्म-ज्ञानके प्रति संशययुक्त मनवाले मनुष्यको न तो इस लोकमें कोई सुख प्राप्त होता है अथवा परलोक में ही, उनके लोक परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। अतएव जो सकाम कर्मोंका परित्याग कर निष्काम कर्मयोग का आचरण करते हैं उनके सारे संशय दूर हो जाते हैं तथा उनके कर्म उन्हें बन्धनमें नहीं डालते।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

जैव-धर्म

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष २, संख्या ३, पृष्ठ ३५६ से आगे]

वर्ण-धर्म भजनके प्रतिकूल होने पर अनायास ही उसका त्याग किया जा सकता है और मुसलमानी-समाज भी भजनके प्रतिकूल होने पर श्रद्धालु मुसलमान उस समाजको त्याग करनेका अधिकारी है। अपने-अपने समाजको त्याग करनेके उपयुक्त अधिकारी हिन्दू और मुसलमान—दोनों यदि वैष्णव हो जाँय, तो फिर उनमें भेद ही कहाँ रहा? क्योंकि दोनों ही अपने-अपने व्यवहार छोड़ चुके हैं। अब परमार्थ विषयमें दोनों भाई-भाई हैं। गृहस्थ-वैष्णवके लिये ऐसा नियम नहीं है। समाज, भजनके प्रतिकूल होने पर भी, समाजको त्याग करनेका पूरा अधिकार प्राप्त न करने तक वह समाजका त्याग नहीं कर सकता। परन्तु जब उनके हृदयमें भजनके अनुकूल विषयोंके प्रति दृढ़ आदरका भाव पैदा हो जाता है, तब वे सहज ही समाजको त्याग कर देते हैं। श्रीमद्भागवतका भी कहना है—

आज्ञायैव गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान्।
धर्म्मान् संत्यज्य यः सर्वान् मां भजेत् स च सत्तमः॥ (क)
(श्रीमद्भा० ११।११।३२)

गीताके चरम सिद्धान्तके रूपमें भी यही प्रतिपादित हुआ है—

सर्व-धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। (ख)
(गी० १८।६६)

पुनः भागवतमें इसकी पुष्टि की गयी है—

यदा यस्यानुगृह्णाति भगवानात्म भावितः।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥' (ग)
(श्रीमद्भा० ४।२९।४६)

चूड़ामणि—'मुसलमान यदि यथार्थरूपमें वैष्णव हो, तो आप लोग उसके साथ एकत्र खान-पानका व्यवहार कर सकते हैं या नहीं?'

वैष्णवदास—'निरपेक्ष वैष्णव उनके साथ बैठ कर महाप्रसादकी सेवा कर सकते हैं। किन्तु गृहस्थ वैष्णव उनके साथ एक जगह खान-पान नहीं कर सकते। परन्तु जहाँतक विष्णु और वैष्णवोंके प्रसाद का प्रश्न है गृहस्थ वैष्णवको भी उनके साथ एक जगह खानेमें कोई अड़चन नहीं, प्रत्युत् उनका तो वह कर्त्तव्य है।'

चूड़ामणि—'तब वैष्णवोंके मन्दिरमें एक मुसलमान-वैष्णवको सेवा-पूजामें अधिकार क्यों नहीं दिया जाता?'

वैष्णवदास—'मुसलमानकुलमें उत्पन्न वैष्णव को मुसलमान कहनेसे अपराध होता है। वैष्णव मात्र को कृष्ण-सेवामें अधिकार है। यदि गृहस्थ वैष्णव

(क) स्वयं भगवान् कहते हैं—मैंने स्वयं वेदोंमें जिन कर्मोंका उपदेश दिया है, उसका गुण-दोष विचार कर उन कर्मोंका सम्पूर्णरूपसे परित्याग कर जो भक्त मेरे ही भजनमें लगा रहता है, वह परम संत है।

(ख) कर्म और ज्ञानादि समस्त नैमित्तिक धर्मोंका परित्याग कर एकमात्र मेरे (भगवान् कृष्णके) शरण में आ जा। मैं तुम्हें—धर्मत्यागसे उत्पन्न सारे पापोंसे मुक्त कर दूँगा। शोक न करो।

(ग) किसी जीवका अपने प्रति आत्मनिवेदन देखकर अथवा उसकी आत्मवृत्ति द्वारा अपनी सेवा होती देखकर जब भगवान उस जीवके प्रति अनुग्रह करते हैं, उसी समय वह भक्त लौकिक अर्थात पार्थिव और वैदिक समस्त कर्मोंकी आसक्तिका परित्याग कर देता है।

देव-सेवामें वर्णाश्रमके विरुद्ध कोई कार्य करता है तो उसे व्यावहारिक दोष लगता है। निरपेक्ष वैष्णवों के लिये मूर्त्ति-पूजाकी व्यवस्था नहीं है। वे मूर्त्ति-पूजा नहीं करते; क्योंकि मूर्त्ति-सेवासे वैष्णव की निरपेक्षतामें विशेष व्याघात पहुँचता है। वे लोग श्रीराधावल्लभकी मानसिक-सेवा करते हैं।'

चूड़ामणि—'समझ गया। अब यह बतलाइये कि, ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें आपलोगों की क्या धारणा है?'

वैष्णवदास—'ब्राह्मण दो प्रकारके हैं—स्वभाव-सिद्ध ब्राह्मण और केवल जातिसिद्ध ब्राह्मण। स्वभाव-सिद्ध ब्राह्मण प्रायः वैष्णव होते हैं। अतएव उनका सम्मान सर्व-सम्मत है। जातिसिद्ध ब्राह्मणोंका व्यावहारिक सम्मान है। इसमें वैष्णवोंकी भी यही सम्मति है। इस विषयमें शास्त्रोक्त विचार यह है—

विप्राद्द्विषड्-गुण-युतादरविन्द-नाभ-
पादारविन्द-विमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पित मनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स्वकुलं न तु भूरिमानः॥' (क)

(श्रीमद्भा० ७।९।९)

चूड़ामणि—'शूद्र आदिको वेद-पाठमें अधिकार नहीं। शूद्र वैष्णव होने पर वेद पढ़ सकता है या नहीं?'

वैष्णवदास—'चाहें किसी भी वर्णका क्यों न हो, शुद्ध वैष्णव होनेसे पारमार्थिक ब्राह्मणता उसे स्वाभाविक रूपसे प्राप्त हो जाती है। वेद दो भागोंमें विभक्त हैं, अर्थात् कर्म प्रतिपादक वेद और तत्त्व प्रतिपादक वेद। व्यावहारिक ब्राह्मणोंका अधिकार कर्म प्रतिपादक वेदमें होता है और पारमार्थिक ब्राह्मणोंका तत्त्व-प्रतिपादक वेदमें। शुद्ध वैष्णव जिस किसी भी वर्णमें उत्पन्न क्यों न हुए हों, वे तत्त्व-प्रतिपादक वेदका अध्ययन और अध्यापन कर सकते हैं तथा ऐसा करते भी हैं। यथा बृहदारण्यक उपनिषद में—

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः

(४।४।२१)

अर्थात्, धीर और स्थिर ब्रह्मज्ञ व्यक्ति परमब्रह्म भगवान्‌को विशेषरूपसे जानकर उनके प्रति प्रकृष्ट अर्थात् उत्तम ज्ञान-स्वरूप प्रेम-भक्ति करेंगे।

बृहदारण्यक उपनिषद्में और एक जगह कहा गया है—

'यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वा
अस्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः।
अथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वा
अस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः॥' (ख)

(बृ० आ० ३।८।१०)

व्यावहारिक ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें मनुजीने कहा है—

'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥' (ग)

(मनुस्मृति २।१६८)

तत्त्व-प्रतिपादक वेदका अधिकार वेदोंमें इस प्रकार निरूपण किया गया है—

(क) मेरी समझसे बारह गुणोंसे युक्त ब्राह्मण भी भगवान् पद्मनाभके चरण-कमलोंसे विमुख हो तो, उससे चण्डालकुलमें उत्पन्न वह भक्त श्रेष्ठ है, जिसने अपने मन, वचन, कर्म और धन कृष्णके चरणोंमें समर्पित कर रखे हैं; क्योंकि वह चण्डाल तो अपने कुलके साथ अपने प्राण तकको पवित्र कर लेता है, किन्तु बड़प्पनका अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता है।

(ख) हे गार्गि! अक्षर ब्रह्म अर्थात् विष्णु वस्तुको न जानकर ही जो लोग इस लोकसे चले जाते हैं, वे अत्यन्त कृपण—नीच शूद्र हैं और जो उन अक्षर ब्रह्मको जानकर इस संसारसे प्रस्थान करते हैं, वे ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण हैं।

(ग) जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उपनयन संस्कारके बाद वेदका अध्ययन न कर अर्थ, विज्ञान और तर्क आदि दूसरे-दूसरे शास्त्रोंके अध्ययन आदिमें परिश्रम करते हैं, वे अपनी जीवित अवस्थामें ही वंशके साथ शीघ्र ही शूद्रत्वको प्राप्त होते हैं।

'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ (क)
(श्वे० उ० ६।२३)

'पराभक्ति' से शुद्धाभक्तिको समझना चाहिए। इस विषयमें मैं अधिक कुछ कहना नहीं चाहता, आप समझ लीजिएगा। संक्षेपमें यों कहा जा सकता है कि जिनकी अनन्य भक्तिमें श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी है, वे तत्त्व प्रतिपादक वेद अध्ययनके अधिकारी हैं तथा जिनको अनन्य भक्ति प्राप्त हो चुकी है, वे तत्त्व प्रतिपादक वेदोंके अध्यापक होने के अधिकारी हैं।'

चूड़ामणि—'क्या आपलोगोंने यह सिद्धान्त कर रखा है कि तत्त्व प्रतिपादक वेद केवल वैष्णव-धर्मकी ही शिक्षा देता है, और किसी धर्मकी शिक्षा नहीं देता ?'

वैष्णवदास—'धर्म एक है, दो नहीं; इसका नाम नित्यधर्म या वैष्णवधर्म है। इसी धर्मके सोपानके रूपमें समस्त नैमित्तिक धर्मोंका उपदेश दिया गया है। भगवान् एकादश-स्कन्धमें कहते हैं—

कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता।
मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥ (ख)
(श्रीमद्भा० ११।१४।४)

कठोपनिषद्का भी कथन है—
'सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति ****
तत्त्वे पदं संग्रहेण ब्रवीमि ।' (ग)
'तद्विष्णोः परमं पदम्' इत्यादि (कठ, १।३।९) (घ)

यहाँ तक विचार होने पर देवी विद्यारत्न और उनके साथियोंका मुँह सुख गया। अध्यापक लोगोंका उत्साह बिलकुल जाता रहा। संध्याके पाँच बज गए थे। सबने प्रस्ताव किया, आजका विचार यहीं स्थगित किया जाय। सर्व सम्मतिसे सभा भङ्ग हुई। ब्राह्मण पण्डित वैष्णवदासके पाण्डित्यकी भूरि-भूरि प्रसंशा करते हुए चले गए। वैष्णव लोग भी हरि-ध्वनि देकर अपने-अपने स्थानोंको चले गए।

षष्ठ अध्याय समाप्त

सप्तम अध्याय
नित्य-धर्म और संसार

सरस्वती नदीके तट पर सप्तग्राम नामक एक बहुत ही प्राचीन नगर था। वहाँ बहुत दिनसे हजारों स्वर्णकार वास करते थे। श्रीउद्धारणदत्त के समयसे नित्यानन्द प्रभुकी कृपासे वे लोग श्री हरिनाम संकर्त्तन में मस्त रहा करते थे। उसी नगरमें एक बहुत ही कृपण स्वर्णकार रहता था। उसका नाम था, चण्डी-दास। वह धन खर्च होनेके डरसे वहाँके नागरिकोंके हरि-संकीर्त्तनमें शामिल नहीं होता। इस तरह वह कंजूसीसे बहुतसा धन जमा कर लिया था। उसकी पत्नी दमयन्ती भी पतिका स्वभाव पाकर अतिथियों और वैष्णवोंका तनिक भी आदर-सत्कार नहीं करती थी। युवावस्थामें ही उन्हें चार पुत्र और दो कन्याएँ पैदा हुई। कन्याओंका क्रमशः विवाह दे कर उन्होंने पुत्रोंके लिये प्रचुर धन जमा कर रखा था

(क) जिस साधककी श्रीभगवान्में पराभक्ति है तथा जिस प्रकार भगवान्में है उसी प्रकार अपने गुरुमें भी शुद्धा भक्ति है, उसी महात्माके सम्बन्धमें इन श्रुतियोंका रहस्यमय अर्थ सम्पूर्ण-रूपसे प्रकाशित होता है।

(ख) भगवान्ने कहा—जिसमें मेरी वाणियोंका (भागवत धर्मका) वर्णन है, वही वेद वाणी समयके फेर से प्रलयकालमें लुप्त हो गयी थी। फिर ब्राह्मकल्पके आदिमें—सृष्टिके समय मैंने उसे ब्रह्माको उपदेश किया था।

(ग) सम्पूर्णवेद जिस पदको बारम्बार परम प्राप्य बतलाते हैं, मैं उसे तुम्हारे निकट संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ।

(घ) वही विष्णुका अर्थात् परम व्यापक परमात्मा वासुदेवका परमपद है इत्यादि।

जिस घरमें संतोंका आना जाना नहीं होता, उस घरके लड़कोंमें दया-धर्म सहज ही कम होता है। लड़के जैसे-जैसे बड़े होने लगे वे अधिकतर स्वार्थी होते गए; यहाँ तक कि रुपयोंके लोभसे माता-पिताकी मृत्युकी सर्वदा कामना करने लगे। वणिक दम्पतिके दुःखकी सीमा न रही। क्रमशः पुत्रोंका भी विवाह हो गया। बहुएँ क्रमशः बड़ी होने लगीं। वे भी अपने-अपने पतियों जैसा स्वभाव प्राप्तकर सास-ससुरके मरनेकी कामना करने लगीं। अब पुत्र सयाने हो गए हैं। दुकानदारीका काम अच्छी तरह संभाल लेते हैं। लेन-देन काफी होता है। पिताका धन भागकर चारों भाई अपना-अपना व्यवसाय खूब अच्छी तरह चलने लगे।

एक दिन चण्डिदासने सबको अपने पास बुला कर कहा—'देखो, मैंने बचपनसे कंजूसी करके तुम लोगोंके लिए इतना धन रख छोड़ा है। हमने कभी भी अपने लिए अच्छे खाने और अच्छे कपड़ोंकी परवा नहीं की। तुम्हारी माताने भी इसी तरहसे जीवन बिताया है। अब हम लोग प्रायः वृद्ध हो चले हैं। ऐसी अवस्थामें हम दोनोंकी सेवा करना तुमलोगोंका धर्म है। किन्तु हमें दुःख है कि तुमलोग हम दोनोंका अत्यन्त अनादर किया करते हो। हमारे पास अब भी कुछ गुप्त धन है, उसे मैं उसीको दूँगा, जो हमारी अच्छी तरह सेवा करेगा।

पुत्रों और पुत्र-वधुओंने मौन होकर उनकी बातों को सुना और अलग जाकर परस्पर सलाह किया, —'पता नहीं, पिताजी अन्यायपूर्वक अपना गड़ा हुआ धन किसे देदें। क्यों न उनको तीर्थ करनेके लिए विदेश भेज दिया जाय और उनकी अनुपस्थिति में सारा धन चुराकर परस्पर बाँट लिया जाय।' बात पक्की हो गयी। सबने मिलकर स्थिर किया कि हो-न-हो पिताजीने वह धन अपने शयन गृहमें ही गाड़ रखा है।

बड़े पुत्रका नाम हरिचरण है। एक दिन प्रातः-काल वे बड़े ही नम्र शब्दोंमें अपने पिताके पास आकर कहने लगे—'पिताजी! आप और माताजी एक बार श्रीनवद्वीप धामका दर्शन कर आवें—मनुष्य जन्म सफल हो जायगा। सुना है—कलिकालमें श्रीनवद्वीप धामके समान अन्य कोई भी तीर्थ फल-दायक नहीं है। नवद्वीप जानेमें कोई कष्ट या खर्च भी नहीं है। यदि पैदल न जा सकें तो, गहने की नाव पर ही चले जा सकते हैं। एक वैष्णवी भी आपलोगोंके साथ जाना चाहती हैं।

चण्डीदासने दमयन्तीके सामने पुत्रका प्रस्ताव रखा। दमयन्तीको पुत्रकी इच्छा जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। दोनोंने आपसमें तय किया कि—'उस दिनकी हमारी धमकीसे लड़कोंका दिमाग सही रास्ते पर आ गया है। रही तीर्थकी बात, सो हमलोग इतने कमजोर थोड़े ही हैं कि पैदल न चल सकेंगे। श्रीपाट कालना और शान्तिपुर होते हुए श्रीनवद्वीप धामको चले चलेंगे।'

शुभ दिन देखकर दोनोंने यात्रा की। वैष्णवी को भी साथमें ले लिया। दूसरे दिन वे अम्बिका कालनामें उपस्थित हुए। वहाँ दोनों एक दुकानघरमें रसोई बनाकर खाने बैठे। इसी समय सप्तग्रामके एक परिचित आदमीने उनको देखकर कहा — 'तुम्हारे लड़कोंने कोठरीका ताला तोड़कर सारा धन ले लिया है। अब वे तुम्हें घरमें भी घुसने न देंगे। तुम्हारा गुप्तधन चारोंने मिलकर बाँट लिया है।'

इस समाचारसे चण्डीदास और दमयन्तीके हृदयमें जोरोंका धक्का लगा। वे धनके शोकमें कतार हो गए। खाना-पीना भी न हो सका, सारा दिन रोते-रोते बीता। साथकी वैष्णवीने इन्हें खूब समझाया—'घरमें आसक्ति न रखो। चलो, तुम दोनों साधु होकर कहीं आश्रम बनाकर वहीं पड़े रहना। जिसके लिए सब कुछ किया, जब वे ही शत्रु बन गए हैं, तब घर लौटने की कोई आवश्यकता नहीं। नवद्वीपमें ही रहना, वहाँ भिक्षा करके खाना भी अच्छा है।'

चण्डीदास और दमयन्ती अपने पुत्रों और पुत्र-वधुओंका व्यवहार सुनकर बार-बार कहने लगे—'हम भले ही मर जायेंगे, किन्तु अब घर न लौटेंगे।'

अन्तमें दोनों अम्बिका ग्राममें एक वैष्णवके यहाँ दो-चार दिन ठहरे। वहाँसे शान्तिपुरका दर्शन करते हुए श्रीनवद्वीपधाम पहुँचे। श्रीमायापुरमें एक बनिया परिवार रहता था। वे उन्हींके घर ठहरे। दो-चार दिन वहाँ रह कर वे लोग श्रीनवद्वीपके सप्तपल्ली, गंगाके उसपार तथा कुलिया ग्रामके सप्त-पल्लीका दर्शन करते हुए भ्रमण करने लगे। कई दिन बाद पुत्र और बहुओंके प्रति फिर ममता उत्पन्न हुई।

चण्डीदासने कहा,—'चलो, हम लोग सप्तग्राम फिर लौट चले, आखीर हमारे लड़के ही हैं न, क्या हम लोगोंको तनिक भी स्नेह नहीं करेंगे ?

'शर्म नहीं आती ? इस बार घर जानेसे वे तुम्हारी हत्या करके रहेंगे।'—वैष्णवीने चिढ़ कर कहा।

वैष्णवीकी बातोंसे दोनों डर गए। उन्होंने कहा —'देवि ! तुम अब अपने स्थान पर चली जाओ, हमलोग काफी समझदार हो गये हैं। किसी अच्छे व्यक्तिसे उपदेश ग्रहणकर अब हमलोग भिक्षाद्वारा जीवन-निर्वाह कर भगवान्‌का भजन करेंगे।'

वैष्णवी चली गयी। दम्पती घरकी आशा छोड़ कर कुलिया ग्राममें छकौड़ी चट्टोपाध्यायके मोहल्लेमें एक घर बनवानेकी चेष्टा करने लगे। कुछ भले आदमियोंसे चन्दा लेकर शीघ्र ही घर तैयार हो गया। अब दोनों वहीं स्थायीरूपसे रहने लगे। कुलिया ग्रामका दूसरा नाम अपराध भञ्जनपाट है। वहाँ वास करनेसे समस्त पूर्व अपराध दूर हो जाते हैं—लोगों का यह विश्वास है।

एक दिन चण्डीदासने कहा—'हरियाकी माँ ! लड़कोंका अब नाम न लो। उनकी कभी याद भी न करो। हमने राशि-राशि अपराध किये हैं। इसी लिये हमने बनियेके घर जन्म पाया है। जन्म-दोषसे कृपण होकर हमलोगोंने कभी भी अतिथि—वैष्णवों की सेवा नहीं की। अब यहाँ कुछ पैसे होने पर अतिथि-सेवा अवश्य करूँगा, दूसरे जन्ममें हमारा कल्याण होगा। सोचा है-एक मोदीखानाकी दुकान खोल दूँ। सज्जन व्यक्तियोंसे कुछ रुपये माँग कर यह रोजगार आरम्भ कर लूँगा।'

चण्डीदासने कुछ ही दिनोंमें एक दुकान खोल दी। प्रतिदिन कुछ न कुछ लाभ होने लगा। पति-पत्निके उदर पूर्त्तिके अतिरिक्त प्रतिदिन एक अतिथि की सेवा होने लगी। पहलेकी अपेक्षा उनका जीवन अच्छी तरह व्यतीत होने लगा।'

चण्डीदास कुछ-कुछ पढ़ना-लिखना भी जानते थे। उन्हें जब अवसर मिलता दुकानमें बैठे-बैठे गुनराजखान कृत 'श्रीकृष्ण विजय' ग्रन्थ' पढ़ा करते। ईमानदारीके साथ दुकानदारी करते और अति-थियोंका सत्कार करते। इस तरह पाँच-छः महीने बीत गये। कुलियाके सभी लोग चण्डीदासका इति-हास जानकर उन पर श्रद्धा करने लगे।

उसी गाँवमें यादवदास नामक एक गृहस्थ वैष्णव रहते हैं। वे प्रतिदिन श्रीचैतन्यमङ्गलका पाठ करते हैं। चण्डीदास भी कभी-कभी उनका पाठ सुनने जाते हैं। यादवदास और उनकी पत्नि सदा वैष्णव सेवामें लगे रहते हैं। इसे देखकर चण्डीदास और दमयन्तीको भी वैष्णव सेवामें रुचि उत्पन्न हुई।

एक दिन चण्डीदासने यादवदाससे पूछा,—'संसार क्या चीज है ?'

यादवदासने कहा—'गंगाके पूरब तट पर श्रीगोद्रुम द्वीपमें बहुतसे तत्त्वज्ञ वैष्णव रहते हैं, चलो, वहीं चलकर यह प्रश्न करना। मैं कभी-कभी वहाँ जाकर बहुतसी शिक्षाएँ लाभ करता हूँ। आजकल श्रीगोद्रुममें ब्राह्मण पण्डितोंकी अपेक्षा वैष्णव-पण्डित शास्त्रीय सिद्धान्तोंमें अधिक निपुण हैं। उस दिन श्रीवैष्णवदास बाबाजीके साथ शास्त्रार्थ में ब्राह्मण पण्डित पराजित हुए हैं। तुम्हारा जैसा गम्भीर प्रश्न है, उसकी उचित मीमांसा वहीं पर हो सकती है।'

तीसरे पहर यादवदास और चण्डीदास गङ्गा पार जानेके लिए तैयार हुए। दमयन्ती अब शुद्ध वैष्णवोंकी सेवा करती है, उसके हृदयकी कृपणता

अब बिलकुल दूर हो गयी है। उसने कहा,— 'मैं भी आप लोगोंके साथ चलूँगी।'

यादवदासने कहा—'वहाँके वैष्णव गृहस्थ नहीं हैं। वे अधिकतर निरपेक्ष और गृहत्यागी हैं। मुझे डर है, तुम्हें साथ ले जानेसे वे दुखी होंगे।'

दमयन्तीने कहा—'मैं दूरसे ही उन लोगोंको दण्डवत्-प्रणाम कर लूँगी, उनके कुञ्जोंमें न जाऊँगी। मैं वृद्धा हूँ, मुझपर वे लोग कभी नाराज न होंगे।'

यादवदासने कहा— 'वहाँ स्त्रियोंको जानेका नियम नहीं है। तुम वहीं समीप ही किसी स्थानमें बैठी रहना, हम लोग लौटते समय तुम्हें साथ ले लेंगे।'

तीनों चल पड़े। धीरे-धीरे वे गङ्गाकी रेती पार कर प्रद्युम्न कुंजके निकट पहुँचे। दमयन्ती कुंजके दरवाजेसे ही साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम कर वहीं एक पुराने वट वृक्षके नीचे बैठ गयी। यादवदास और चण्डीदास कुंजके भीतर चले गये और मालती-माधवी मण्डपमें बैठी हुई वैष्णव-मण्डलीको भक्तिके साथ दण्डवत्-प्रणाम किये।

परमहंस बाबाजी बैठे हैं। इनके चारों ओर श्री वैष्णवदास, लाहिड़ी महाशय, बाबा अनन्तदास आदि बहुतसे लोग बैठे हैं। यादवदास भी वहीं बैठ गए। यादवदासके पास ही चण्डीदास भी बैठे।

'ये नये आदमी कौन हैं?'— अनन्तदास बाबा जी ने यादवदासकी ओर देखा।

यादवदासने चण्डीदासका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अनन्तदास बाबाजीने हँस कर कहा—'हाँ। संसार इसे ही कहते हैं! जो संसारको पहचानते हैं, वे बुद्धिमान् हैं और जो संसार चक्रमें पड़ जाते हैं, उनकी स्थिति बड़ी शोचनीय होती है।'

चण्डीदासका मन क्रमशः निर्मल हो रहा था। नित्य सुकृत करनेसे अवश्य कल्याण होता है। वैष्णवोंका सत्कार, वैष्णव ग्रन्थोंका पाठ और श्रवण करने से नित्य-सुकृत होता है। नित्य-सुकृतसे चित्त निर्मल होता है तथा अनन्य भक्तिमें सहज ही श्रद्धा होती है।

चण्डीदास श्रीअनन्तदास बाबाजीके उपदेशोंको सुनकर बड़े ही कातर शब्दोंमें कहने लगे—'मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि मुझे यह स्पष्टरूपमें बतलावें कि संसार क्या चीज है?'

अनन्तदास बाबाजीने कहा—'प्रश्न गंभीर है। मेरी इच्छा यह है कि इस प्रश्नका उत्तर या तो परमहंस बाबाजी दें अथवा वैष्णवदास बाबाजी।'

परमहंसदास बाबाजीने कहा—'प्रश्न जैसा गंभीर है, अनन्तदास बाबाजी भी वैसे ही योग्य उत्तरदाता हैं। आज हम सभी लोग बाबाजीका उपदेश सुनेंगे।'

अनन्तदास—'जब आपकी आज्ञा है, तब मैं जो कुछ जानता हूँ अवश्य कहूँगा। सबसे पहले मैं भगवत पार्षद-प्रवर श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी—श्रीगुरुदेवके चरण-कमलोंका स्मरण करता हूँ।'

'जीवकी दो दशाएँ दिखलाई पड़ती हैं—मुक्त दशा और संसारबद्ध दशा। वे जीव, जो भगवान् कृष्णके शुद्ध भक्त हैं तथा जो कभी भी माया द्वारा बद्ध नहीं हुए अथवा माया द्वारा बद्ध होने पर भी कृष्णकी कृपासे इस मायिक जगत्से मुक्त हो चुके हैं, उन्हें मुक्त जीव कहते हैं। ऐसे मुक्त जीवोंकी अवस्थाको मुक्तदशा कहते हैं। दूसरी तरफ जो जीव भगवान् कृष्णसे विमुख होकर अनादि कालसे मायाके कवलमें पड़े हुए हैं, उन्हें बद्धजीव कहते हैं और ऐसे बद्ध जीवोंकी अवस्थाको संसारबद्ध दशा कहते हैं। मायामुक्त जीव चिन्मय होते हैं तथा कृष्णकी सेवा (कृष्णदास्य) ही उनका जीवन होता है। वे जड़ जगत्में नहीं रहते। वे जिस विशुद्ध चित् जगत्में वास करते हैं उसका नाम है गोलोक, वैकुंठ वृन्दावन इत्यादि।

मायाबद्ध जीवोंकी संख्या अनन्त है। कृष्ण विमुखता ही जीवोंका दोष है। इसी दोषके कारण कृष्णकी छाया-शक्ति—जिसे माया कहते हैं जीवको अपने सत्, रज और तम्—इस त्रिगुणात्मक रज्जुसे आबद्ध कर रखा है। गुणोंके तारतम्यसे बद्ध जीवोंकी अवस्थाएँ बड़ी विचित्र दीख पड़ती है। शरीरकी विचित्रता, भावकी विचित्रता, रूपकी विचित्रता,

स्वभावकी विचित्रता, स्थानकी विचित्रता और गतिकी विचित्रता पर विचार करें। जीवने संसारमें प्रवेश कर एक नये 'आमित्व' का आश्रय लिया है। शुद्धावस्थामें जीवका 'मैं कृष्ण दास हूँ'--ऐसा आमित्व था। किन्तु बद्धावस्थामें—मैं मनुष्य हूँ, मैं देवता हूँ, मैं पशु हूँ, मैं राजा हूँ, मैं ब्राह्मण मैं चण्डाल हूँ, मैं बीमार हूँ, मैं भूखा हूँ, मैं अपमानित हूँ, मैं दाता हूँ, मैं पति हूँ, मैं स्त्री हूँ; मैं पिता हूँ, मैं पुत्र हूँ, मैं शत्रु हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं रूपवान हूँ, मैं धनी हूँ, मैं दरिद्र हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ, मैं वीर हूँ, मैं कमजोर हूँ-ये नाना प्रकारके आमित्व पैदा हो जाते हैं। इसका नाम 'अहंता' है। इस अंहता के अतिरिक्त ममता नामक एक दूसरी चीज भी बद्ध जीवमें प्रवेश करती है। जैसे—मेरा घर, मेरी चीज, मेरा धन, मेरा शरीर, मेरी सन्तान, मेरी पत्नि, मेरे पति, मेरी माता, मेरा वर्ण, मेरी जाति, मेरा बल, मेरा रूप, मेरा गुण, मेरी विद्या, मेरा वैराग्य, मेरा ज्ञान, मेरा विज्ञान, मेरा कर्म, मेरी सम्पत्ति, मेरे सेवक इत्यादि को 'ममता' कहते हैं। 'मैं' और 'मेरा' को लेकर जो प्रकाण्ड व्यापार दिखलायी पड़ता है, उसीका नाम संसार है।'

यादवदास—'हमलोग बद्ध दशामें 'मैं' और 'मेरा' देखते हैं। क्या मुक्त अवस्था में 'मैं' और 'मेरा' नहीं रहता ?'

अनन्तदास—'रहता है। मुक्त अवस्थामें 'मैं' और 'मेरा' चिन्मय और निर्दोष होता है। भगवान्ने जीवका जैसा स्वरूप बनाया है उसका शुद्ध परिचय मुक्त अवस्थामें ही यथायथ पाया जाता है। वहाँ भी 'मैं' अनेक प्रकारका होता है। वहाँ चिद्रस भी अनेक प्रकारका होता है। रसके जितने प्रकारके चिन्मय उपकरण होते हैं वे सब भी 'मेरा' हैं।'

यादवदास—'तब बद्धावस्थामें ही 'मैं' और 'मेरा' अनेक प्रकार होनेमें दोष क्या है ?'

अनन्तदास—'दोष यह है कि शुद्ध अवस्थाका 'मैं' और 'मेरा' ही सत्य है। और संसारमें जितने प्रकारके 'मैं और 'मेरा' हैं—सभी कल्पित होते हैं, आरोपित होते हैं। अर्थात् जीवके सम्बन्धमें ये सत्य नहीं बल्कि मिथ्या हैं अथवा इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जीवके लिए ये परिचय बिलकुल मिथ्या हैं। अतः संसारके समस्त परिचय ही अनित्य, प्राकृत और क्षणिक सुख-दुखप्रद हैं।'

यादवदास—'क्या मायिक संसार मिथ्या है ?'

अनन्तदास—'मायिक जगत् मिथ्या नहीं है, बल्कि कृष्णकी इच्छासे यह जगत् सत्य है। किन्तु इस मायिक जगत्में प्रवेशकर जीव जिन्हें 'मैं' और 'मेरा' मानता है, वे सब मिथ्या हैं। जो लोग जगत् को मिथ्या मानते हैं, वे मायावादी हैं। ऐसे व्यक्ति अपराधी हैं।'

यादवदास—'हमलोग इस मिथ्या सम्बन्धमें क्यों पड़े हुए हैं ?'

अनन्तदास—'भगवान् पूर्ण चिद्वस्तु हैं और जीव चित्कण हैं। जड़ जगत् और चित् जगत्-दोनों की बीच सीमा पर जीवका प्रथम अवस्थान है। जो जीव यहाँ पर कृष्णके साथ अपना सम्बन्ध नहीं भूले, वे चित् शक्तिका बल पाकर चित् जगत्के प्रति आकृष्ट हुए अर्थात् नित्य पार्षद होकर कृष्णसेवानन्द का भोग करने लगे और जो जीव कृष्णसे विमुख होकर मायाको भोगकरनेकी कामना किये, मायाने अपनी शक्तिसे उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसी समयसे हमारी यह संसार-दशा प्राप्त हुई है। संसार-दशा प्राप्त होनेके साथ-साथ जीवका सत्य परिचय अन्तर्हित हो जाता है। 'मैं मायाका भोक्ता हूँ' यह मिथ्या अभिमान जीवको विचित्ररूपसे आच्छादित कर देता है।'

यादवदास—'चेष्टा करनेके बावजूद भी हमलोगों का सत्य स्वरूप क्यों नहीं प्रकाशित होता है ?'

अनन्तदास—'चेष्टा दो प्रकारकी होती है—उपयुक्त और अनुपयुक्त। उपयुक्त चेष्टा करनेसे मिथ्या अभिमान अवश्य दूर होगा। अनुपयुक्त चेष्टा द्वारा वैसा फल कैसे पाया जा सकता है ?'

(क्रमशः)

प्रचार-प्रसंग

मथुरामें श्रीश्रीजन्माष्टमी और नन्दोत्सव—

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखामठ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें गत १३ भाद्र (२६ अगस्त) बुधवारको श्रीश्रीजन्माष्टमी व्रतोपवासका अनुष्ठान ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव महाराजकी अध्यक्षतामें खूब समारोहके साथ पालन किया गया। उस दिन भक्तवृन्द यथाविधि निर्जला उपवास रहकर सर्वदा कृष्ण-लीलाका श्रवण और कीर्त्तन किये। मंगल आरती और उषा-कीर्त्तनसे आरम्भ कर रात १२ बजे तक श्रीमद्भागवतका लगातार पारायण होता रहा। श्रीकृष्णके जन्म-लीलाका प्रसंग विशदरूपसे आलोचित हुआ। आधी रातके समय तुमुल संकीर्त्तन-ध्वनिके बीच श्रीकृष्णका अर्चन-पूजन औरभोग-राग विधिवत सम्पादित हुआ। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके उपलक्ष्यमें भक्त-मण्डलीको विविध-प्रकारका विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया।

पटनामें सनातन धर्मका प्रचार—

समितिके अन्यतम प्रचारक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज और श्रीपाद गोराचाँद ब्रह्मचारीके साथ गत १८ श्रावण (४ अगस्त) से २२ भाद्र (७ सितम्बर) तक पटनाके विभिन्न अञ्चलोंमें सनातन धर्मका प्रचार कर २३ भाद्र (८ सितम्बर) को अईयापुर (पश्चिम बंग) पधारे।

अईयारपुर (बर्द्धवान जिला) में राधाष्टमी—

गत २४ भाद्र (९ सितम्बर) को श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता और सभापति परिव्राजकाचार्यवर्य ॐ विष्णुपाद श्री श्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव महाराज श्रीश्रीराधाष्टमीके उपलक्ष्यमें अईयारपुर ग्राममें श्रीपाद परानन्द प्रभुके आश्रम पर पधारे। त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज और कतिपय ब्रह्मचारी उनके साथ थे। २५ भाद्रसे तीन दिनों तक प्रतिदिन कीर्त्तन और आचार्यदेवके प्रवचन तथा भाषण हुए। आचार्यदेवके मुखसे श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा तथा श्रीमद्भागवतकी पाण्डित्य-पूर्ण प्राञ्जल व्याख्या सुनकर श्रौत मण्डली अघाती न थी। गत २९ भाद्र [१४ सितम्बर] को वे श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चूँचुड़ा लौट गए हैं।

श्रीश्रीद्वारकाधामकी परिक्रमा

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एक विशुद्ध धार्मिक संस्था है। इसका उद्देश्य है—विश्वमें विशुद्ध भक्तिका प्रचार, सत्संग द्वारा धार्मिक-जीवनको प्रोत्साहन-दान, तथा विविधरूपमें सर्व-साधारणके अन्तःकरणमें धर्म-भाव जागरित करना। इसी दृष्टिकोणको सामने रखकर इस संस्थाकी ओरसे इस वर्ष द्वारकाधामकी परिक्रमाका आयोजन किया गया है। रास्तेमें ८४ कोस व्रज-मण्डलकी भी परिक्रमा की जायगी। आगामी ३१ आश्विन, १७ अक्टूबर, बुधवारको परिक्रमाके लिए यात्राका दिन स्थिर किया गया है। संरक्षित (रिजर्व) ट्रेन द्वारा रास्तेमें मन्दार पर्वत (मधुसूदन), अयोध्या, नैमिषारण्य, मथुरा, वृन्दावन, जयपुर, पुष्कर, सावित्री आदि तीर्थ-स्थानोंके दर्शन किये जायँगे। विशेष विवरणके लिए 'सम्पादक, श्रीभागवत-पत्रिका' के निकट पत्र-व्यवहार करें।